चन्दामामा
सितम्बर १९८९

पकड़ो
अपने
दोस्त को...
कहीं,
ग़ायब
न हो जाए.

चन्दामामा

सितम्बर 1989

★

विषय-सूची

संपादकीय	...	७
'चन्दामामा' के संवाद	...	९
बहुत चालाक	...	१०
सुई और कुल्हाड़ी	...	११
पिता और पुत्र	...	१५
राजनीति	...	२३
वारिस	...	३०
चंदामामा पुरवणी ११	...	३३
नेहरू की कहानी–८	...	३७
लालच का फल	...	४१
कृष्णावतार	...	४५
गुप्त वसीयतनामा	...	५३
तीन चीज़ें	...	५८
चिदम्बर का रहस्य	...	६१
प्रकृति के आश्चर्य	...	६३
फोटो-परिचयोक्ति	...	६५

★

एक प्रति : ३-००

वार्षिक चन्दा : ३६-००

सुफु नुड्ल जापानी कारीगरी की कोमल देखरेख मे तैयार जो आज के स्वास्थ्य सम्मत आहारका पूरा उपयोगी है । अनुपम स्वाद से भरा सुफु सचमुच सुविधाजनक है । सुफु-अबसे यह नया नुड्ल चखकर तो देखिए ।

बहुत उपादेय स्वाद

सुफु बनता है खाटी मेदा और ताज़ा खाद्य तेल से । सुपर टेस्टर में है ऐसा उपादेय उपादान जिसकी वजह से मुंह में पानी आ जाता है । सुफु एक ऐसा सहज आहार है जो बनता भी है सहज ही । और स्वाद ! इसे तो सिर्फ सुफु ही बता सकता है ।

खाद्यगुण से भरा

सुफु अत्यन्त पौष्टिक सम्पूर्ण आहार है । इसमें कैलोरी का परिमाण भी है बहुत ज्यादा । और है परिमित कार्बोहाइड्रेट और परिपूर्ण प्रोटीन गुण । सबसे बड़ी बात — सुफु पचता भी है सहज ही । और हाँ—सुफु हर तरह से प्राकृतिक गुण से भरपूर है ।

जापानी कारीगरी की कोमल देखभाल

जापान में सुदक्ष कर्मी समस्त कामकाज, परीक्षा-निरीक्षण, कम्प्यूटर से करते हैं । यानी सुफु सम्पूर्ण कम्प्यूटर से बनता है — मानव हाथ की कोई जरूरत नहीं । अभिज्ञ खाद्य विशेषज्ञ इसकी गुणवत्ता के मामले में हरवक्त सतर्क रहते हैं ।

निपुण कारीगरी की वजह से नुड्ल बनाने में अब आया कोमल देखरेख का स्पर्श ।

A CHANDAMAMA PUBLICATION
चन्दामामा
संस्थापक : चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी
इस महीने में "पिता-पुत्र" धारावाहीं समाप्त होता है। इसके बारे में आप अपनी राय हमको लिख सकते हैं। अगले महीने से नया धारावाही "डाकू युवराज" शुरू होनेवाला है। हमारा विश्वास है, कि यह नया धारावाही पाठकों को पसन्द आएगा।
अमरवाणी
संवत्सु महतां चित्तं, भवत्युत्पल कोमलम् ।
आपत्सु च महाशैल शिलासंघात कर्कशम् ।।
[महान् लोगों का मन संपदा की स्थिति में कुमुद की भाँति अत्यन्त कोमल; तथा विपदा की स्थिति में कठिन शिला सदृश दृढ होता है ।]
वर्ष : ४२
सितंबर १९८९
अंक : १
एक प्रति : ३-००
::
वार्षिक चन्दा : ३६-००

CHANDAMAMA

चन्दामामा के सम्वाद

बिजली संग्राहक

वास्तव में यह बात आश्चर्यजनक ही लगती है, पर है सच! जर्मनी का निवासी रिचर्ड रीडिजेर बिजली के गिरने से दर्पण की भाँति परिवर्तित होनेवाले बालू के कणों का संग्रह कर रहा है । ये कण आसमान में चमकनेवाली बिजली की चमकती बेल जैसे दिखते हैं ।

वानरों का दुर्ग

शिमला के समीप स्थित पहाड़ी शिखर पर लम्बे देवदार वृक्षों की शीतल छाया में एक हनुमान-मन्दिर है । वहाँ जानेवाले भक्तों द्वारा समर्पित फल तथा अन्य खाद्य पदार्थों को खाते हुए आनन्दपूर्वक विहार करनेवाले हज़ारों वानर, उस मन्दिर के चारों तरफ निवास करते हैं ।

तितलियों का आक्रमण

सब लोगों ने सुना होगा कि टिड्डी-दल गाँवों, शहरों और खेतों पर हमला बोल देते हैं । लेकिन क्या तितलियों के हमले के बारे में भी आप ने कभी सुना है? कारण तो नहीं बता सकते, मगर ईरान के दरगाज नगर के कुछ यात्रियों तथा ड्रायवरों पर तितलियों ने हमला कर के उन्हें दृष्टिहीन कर दिया है ।

हाथी का सत्याग्रह

मदुरा नगर में एक महावत को पुलिस इसलिये गिरफ्तार करके थाने में ले गयी, कि वह भीड़ भरे सर्कीट के समीप हाथी को ले आकर लोगों से पैसा वसूल कर रहा था । इसपर उसका हाथी भी थाने के सामने बैठकर एक प्रकार से सत्याग्रह करने लगा । उसने आने-जाने वाले लोगों को रोक रखा । आख़िर पुलिस ने महावत को छोड़ दिया । और उसे अपनी पीठ पर बिठाकर विजय गर्व से अपनी सूँड उठाये चिंघाडता हुआ हाथी वहाँ से चला गया ।
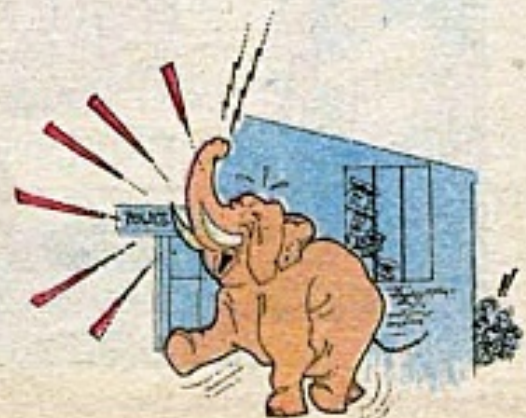
बहुत चालाक !

किसी गाँव की गली से होकर एक नौजवान घोड़े पर सवार हुए बिना उसकी बागडोर हाथ में पकड़ कर पैदल दौड़ा चला जा रहा था । यह दृश्य देख लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । आखिर वह गाँव के छोरवाली सराय के चबूतरे पर बैठ गया और अपनी थकान मिटाने लगा ।

"घोड़ा साथ में होते हुए तुम्हें पैदल दौड़ने की क्या ज़रूरत है भला?" सराय के मालिक ने नौजवान से पूछा ।

युवक ने तुरन्त उत्तर दिया—"क्यों कि मुझे जिस गाँव में जाना है, वहाँ जल्दी पहुँच जाऊँ!"

"तब तो तुम घोड़े पर सवार हो सकते थे न?" सराय के मालिक ने आश्चर्य से पूछा ।

युवक उत्तर में केवल हँस दिया, जैसे कि कोई रहस्य छिपाना चाहता हो! जवाब उसने कुछ नहीं दिया । इस पर सराय के मालिक ने दुबारा वही सवाल पूछा ।

तब युवक ने बड़े आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया—"मैं जिस गाँव में जाना चाहता हूँ, वहाँ तक पैदल ही जाने का मैंने पहले निश्चय किया था । लेकिन मेरे मालिक ने घोड़े पर जाने की सलाह देते हुए मुझे समझाया—'दो पैरों से चार पैरों की गति आधिक होती है!' यह बात सुनने पर मेरा विवेक जाग उठा । मैंने सोचा कि यदि दो पैरों से चार पैरों की गति अधिक है, तो चार पैरों से छः पैरों की गति अधिक न होगी? इस लिए घोड़े के चार पैरों के साथ मैंने अपने दो पैरों का उपयोग किया! समझे?"

सुई और कुल्हाड़ी
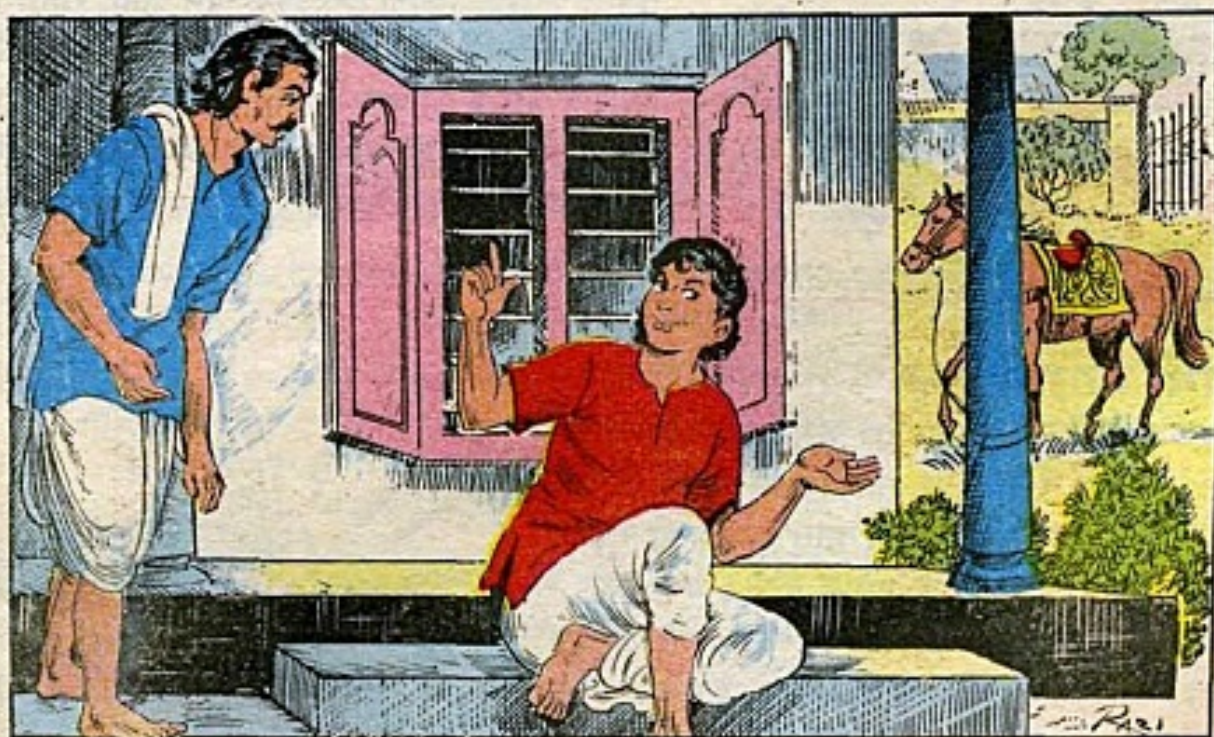
प्राचीन काल में कोसल देश पर राजा शान्तिवर्धन राज्य करते थे। प्रजा की सुख-सुविधा के लिये अनेक प्रकार की योजनाएँ वे अमल में लाते थे। लेकिन कोसल देश बहुत बड़ा होने के कारण किसी न किसी कोने में बसने वाले लोक अशान्ति व असुविधा का शिकार बनते रहते थे। राजा के दर्शन के लिये प्रति दिन कई लोग राजधानी में आ जाते थे; लेकिन उन सब का परामर्श करना, उनकी समस्याएँ हल करना राजा के लिये संभव नहीं होता था। इस से कुछ लोग राजा से असंतुष्ट हो जाते थे। वे समझते थे कि अकेले राजा कितने लोगों की शिकायतें सुन सकता है। फिर भी राजा के दर्शन करने का अवसर न पाकर उन्हें दुख ज़रूर होता।

यह समस्या हल करने का एक उपाय राजा ने सोचा। उपाय इस प्रकार था—किसी एक समर्थ, बुध्दिमान तथा चरित्रवान व्यक्ति का चुनाव करके उसको राजा व प्रजा के बीच की शृंखला के रूप में नियुक्त किया जाय। उसका काम होगा-जनता की शिकायतों व समस्याओं को सावधानी से सुनकर उनको हल करने के उपाय उन उन विभागों तथा शाखा-कार्यालयों के अधिकारियों को मालूम करके उन कार्यक्रमों को अमल में लाने की विधि का निरीक्षण करना। उसका एक और काम यह भी होगा कि अत्यन्त मुख्य विषय राजा को निवेदन करना।

राजा शान्तिवर्धन ने इस अधिकारी के पद का नामकरण किया 'प्रजा-प्रतिनिधि'। अपने ये विचार उसने मन्त्री कुमारभट्ट के सामने रखे।

कुमारभट्ट को 'प्रजा प्रतिनिधि' की नियुक्ति का विचार बड़ा अच्छा लगा। उसने राजा से कहा—"आप का विचार उत्तम है।

संध्या भार्गव
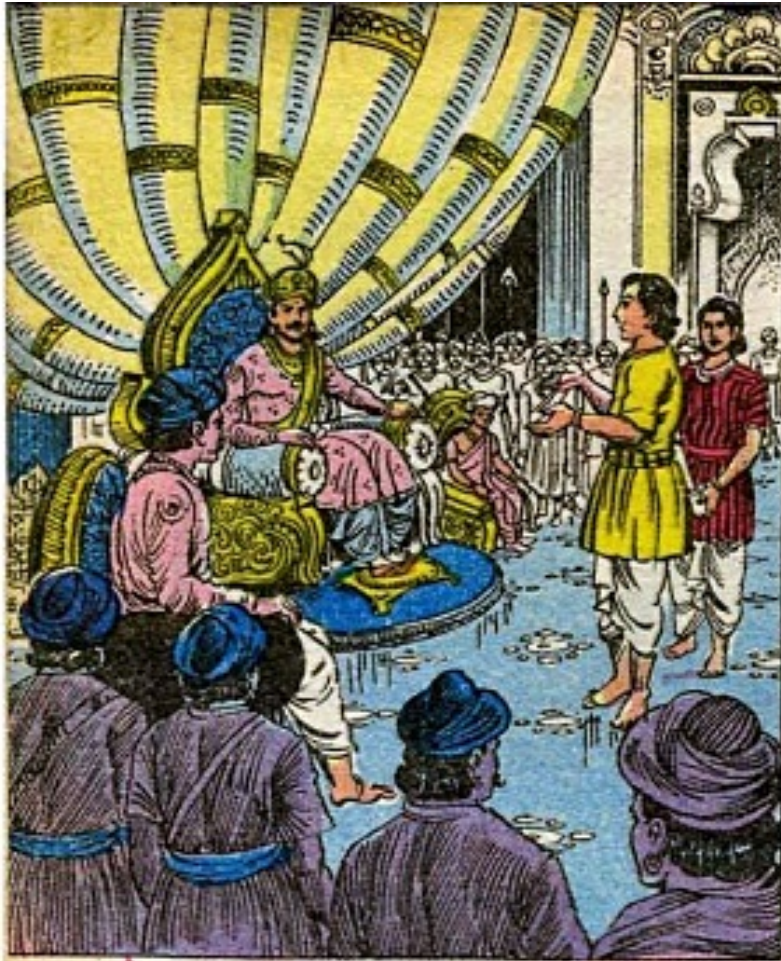
हमारे देश का शासन यदि 'सर्वे जनास्सुखिनो भवन्तु ।' होना है, तो इस प्रकार के पद की नितान्त आवश्यकता है । परन्तु आप ने प्रजा-प्रतिनिधि पद के लिये जिन गुणों को आवश्यक माना, उन के साथ उसके अन्दर सहनशीलता, अनुशासनप्रियता और जनता के बीच एकता स्थापित करने की क्षमता भी होनी चाहिये । हम शीघ्र ऐसे आदमी की खोज करेंगे ।"

राजा को कुमारभट्ट की सूचना उचित ही लगी । प्रजा-प्रतिनिधि में जिन विशेष गुणों का होता आवश्यक है, उन्हे कुमारभट्ट बिलकुल ठीक समझा था । राजा ने कुमारभट्ट की चतुराई की प्रशंसा की ।

इसके बाद शीघ्र ही 'प्रजा-प्रतिनिधि' पद के लिये आवेदकों की माँग करते हुए राज्य के कोने कोने में ढिंढ़ोरा पिटवाया गया । कई आवेदक आये और उनकी परीक्षा की गयी । राज्य भर के होनहार, बुद्धिमान नौजवान इस नये अधिकार-पद की लालसा से परीक्षा के लिए आये थे । शुरू में सब को एक-से कुछ प्रश्न पूछे गए । फिर एक एक की अलग अलग परीक्षा ली गई । अंत में एक वक्तृत्व-प्रतियोगिता का आयोजन किया गया । ऐन वक्त पर जो विषय दिया जाएगा, उस पर वक्तृता देनी थी ।

उस परीक्षा में आखिर सुकुमार तथा गुणशील नाम के दो युवक राजा शान्तिवर्धन और मन्त्री कुमारभट्ट को पसन्द आये । पर अब जब इन दोनों में से केवल एक का चुनाव करने का प्रश्न उठा तब शान्तिवर्धन ने सुकुमार का चयन किया तो कुमारभट्ट ने गुणशील का!

इसपर शान्तिवर्धन ने मन्त्री से कहा, "महामन्त्री, मैं यह नहीं समझता कि मेरा निर्णय ही अन्तिम है । मैं स्वयं जानता हूँ, कि शासन के कार्यों व अधिकारियों की नियुक्ति के काम में भी आप अपार प्रज्ञा रखते हैं । लेकिन आज पहली ही बार हम दोनों के विचारों में भिन्नता दिखाई दी । इसलिये हमारे द्वारा चुने गये उम्मीदवारों को हम राजगुरु मातंग के पास भेजेंगे व उनके निर्णय को स्वीकार करेंगे ।"

राजा का यह विचार मन्त्री को खूब भाया । जब दो व्यक्तियों में मत-भेद होता

है, तब किसी तीसरे सुयोग्य व्यक्ति की राय लेना ही समुचित होता है । फिर सुकुमार व गुणशील को तुरन्त मातंग के पास भेजा गया ।

दूसरे दिन सबेरे दोनों नौजवान गुरु के यहाँ से लौटकर राजमहल पहुँचे । महामन्त्री कुमारभट्ट भी वहाँ उपस्थित थे । मन्त्री ने युवकों से पूछा, ''गुरुजी का हमारे लिये क्या सन्देश है?''

उम्मीदवारों ने इसके उत्तर में अपनी अपनी चीज़-जो गुरु से प्राप्त हुई थी–उनके सामने रखी ।

''मातंग गुरुजी ने हम से कुछ कहा नहीं, मगर इन चीज़ों को जाकर आप के हाथ सौंपने का आदेश दिया है ।'' सुकुमार व गुणशील ने एक स्वर में कहा ।

सुकुमार एक कुल्हाड़ी लाया था और गुणशील एक सुई । चीज़ देखकर कुमारभट्ट मुस्कुरा उठा । मगर राजा ने मन्त्री की ओर आश्चर्य से इस प्रकार देखा, मानों उन वस्तुओं को भेजने का गूढ अर्थ उसकी समझ में न आया हो ।

कुमारभट्ट ने कहा, ''महाराज, गुरुजी के भाव को मैं समझ गया । लेकिन उनका आशय इन नौजवानों के मुँह से कहलवाना भी उनकी मेधा की एक और परीक्षा प्रमाणित होगी । इसलिये अपनी अपनी चीज़का गूढार्थ ये स्वयं कहेंगे ।''

शान्तिवर्धन ने स्वीकृतिसूचक गर्दन हिलायी । और सुकुमार की ओर देख अर्थ बताने का संकेत किया ।

प्रसन्नता और अभिमान भरे स्वर में सुकुमार तत्काल बोलने लगा, ''महाराज, मुझे लगता है कि मातंग गुरुजी ने इस कुल्हाड़ी के माध्यम से मेरी सामर्थ्य जताने का प्रयत्न किया है । कुल्हाड़ी जिस प्रकार पैनी है और दमक रही है, उसी प्रकार मेरी मेधा भी तेज़ और प्रकाशमान है । यह कुल्हाड़ी जिस प्रकार भारी वृक्ष के तने को भी काट सकती है, उसी प्रकार मेरी मेधा भी कठिन से कठिन समस्या को आसानी से हल कर सकती है । गुरुजी द्वारा यह वस्तु मुझे प्रदान करने का तात्पर्य है कि यही मेरी मेधा की कसौटी है । इसलिये मेरा विचार है कि गुरु मातंग ने मुझको ही 'प्रजा प्रतिनिधि' पद के लिये चुना

है ।''

सुकुमार की व्याख्या सुनने पर राजा के चेहरे पर ऐसी प्रसन्नता खिल उठी की मानों उस कथन से वह पूर्ण रूप से संतुष्ट है ।

इसके बाद गुणशील ने अत्यन्त विनयपूर्वक अपना निवेदन किया, ''प्रभु, कृपया आप यह न सोचिये कि मैं अपने साथी उम्मीदवार का अपमान कर रहा हूँ। सुकुमार ने कुल्हाड़ी के बारे में जो कुछ कहा वह प्रायः सब सच ही है । लेकिन वह एक बात भूल गया है—चाहे चन्दन वृक्ष हो, कुल्हाड़ी एक इकाई में स्थित वस्तु के टुकड़े टुकड़े करने का काम करती है । मगर सुई आकृति में छोटी क्यों न हो, फटकर दो भागों में विभक्त वस्त्र को सिलाकर पुनः एक बना देती है । इसलिये कुल्हाड़ी जहाँ विनाश का चिन्ह है, वहाँ सुई एकता की प्रतिनिधि है ।''

गुणशील की ये बातें सुनकर राजा असमंजस में पड़ गया और कुमारभट्ट की ओर देखने लगा ।

कुमारभट्ट ने समझाया, ''प्रभु, गुणशील का कथन पूर्णतया सत्य है । वैसे सुकुमार बुद्धिमान अवश्य है, लेकिन उसके अन्दर सहनशीलता और एकता का भाव कम है । हम ने 'प्रजा प्रतिनिधि' के लिये जिन गुणों की आवश्यकता का अनुभव किया, उन्हीं को मातंग गुरु ने भी मान्यता देकर गुणशील का चुनाव किया है । उनका चुनाव कितना सार्थक है, वह इन दोनों के बयानों द्वारा आप समझ गये होंगे । आकृति में बड़ी व पैनी वस्तु को मातंग गुरु से पाकर सुकुमार ने सोचा कि यह पद उसीको प्राप्त होगा और उस विचार से वह अंहकार में आ गया । लेकिन सही समझ से उक्त पद को अपना ही मानने के बावजूद भी गुणशील अपनी वस्तु का मर्म विनयपूर्वक बताकर मौन रह गया । इसलिये 'प्रजा-प्रतिनिधि' के पद के लिये सभी दृष्टि से अर्हता रखनेवाला व्यक्ति वही है ।''

मन्त्री का सुझाव सुनकर राजा शान्तिवर्धन संतुष्ट हुआ और उसने गुणशील को 'प्रजा-प्रतिनिधि' के पद पर नियुक्त किया ।

पिता और पुत्र

४

"आओ बेटे, खाना खा लो! सुबह आध-पेट खाकर चले थे।" कहते हुए रसोइन ने सूर्यप्रसाद को बिठाकर खाना परोस दिया।

वह खाना खा रहा था, तब रसोइन ने पूछा, "क्या आज मास्टरजी ने खूब पीटा है तुम्हें?"

सूर्यप्रसाद का चेहरा लज्जा से लाल हो गया।

बात बदलने के ख्याल से उसने पूछा, "क्या कोई मुझ से मिलने तो कोई आया नहीं था?"

"तुम से मिलने कौन आएगा बेटे?" रसोइन पूछ बैठी।

सूर्यप्रसाद ने सत्यनारायण के बारे में कुछ पूछना चाहा; मगर उसकी समझ में न आया कि, कैसे पूछा जाय। पर भाग्यवश रसोइन ने स्वयं ही बताया, "तुम्हारे पिताजी से मिलने कई लोग आये; मगर लगता है उनकी तबियत ठीक नहीं है। एक-दो लोगों से मिलने के बाद अपनी तबियत बिगड़ने की बात कहकर वे कमरे में सोये पड़े हैं।"

"कौन कौन आये थे?" सूर्यप्रसाद ने पूछा।

रसोइन ने दो-तीन व्यक्तियों के नाम बताये। सूर्यप्रसाद का कौतुहल बढ़ता गया। जल्दी जल्दी खाना खाकर वह अपने कमरे के पास पहुँचा और उसने दरवाज़े पर दस्तक दी। कोई जवाब न सुनकर उसने फिर दो-तीन बार दस्तक दी मगर अन्दर से

शोर मचाओगे तो पिताजी तुम्हारी अच्छी मरम्मत करेंगे ।" चेतावनी देकर नौकर वहाँ से चला गया ।

सूर्यप्रसाद ने सोचा कि जिन लोगों से उसका लेन-देन का ज़रूरी काम है, उन्हें चिठ्ठियाँ लिख दें । मगर जान-पहचान के लोग उसकी लिखावट भी पहचानते थे । वह गहरे सोच में पड़ गया; किसी भी प्रकार से बचने का कोई मार्ग नहीं है । इसके अलावा थोड़ी देर में पाठशाला भी तो जाना है । साथ ही बेचारा सूर्यप्रसाद अपनी निजी हालत के बारे में विचार करेगा, कि घर के मामलों का? सत्यनारायण का रहस्य लोगों पर जब तक नहीं खुलेगा तब तक उसके बारे में कोई सोचेगा भी नहीं । उसने सोचा कि, मैं कहीं भाग जाऊँ तो ये उलझनें शायद सुलझ सकती हैं । मेरे जाने का विचार सत्यनारायण पर खुल जायेगा तो वह मुझे जाने नहीं देगा । धन के हाथ लगने का भी कोई उपाय नहीं है । – आखिर उसने घर से धन लिये बिना ही भाग जाने का निर्णय किया । दोपहर ढाई बजे गाडी निकलनेवाली थी, उस में बैठकर कहीं दूर जानेकी योजना बना ली । मगर उसने यह नहीं सोचा कि, आख़िर जाना कहाँ है; और क्या करना है!

सत्यनारायण घर के अन्दर किवाड़ की चिटकनी चढ़ाकर बैठा रहा । इस बीच कोई उधार माँगने आया । उसका चेहरा भी देखे बगैर रसोइन के हाथ दस रुपये देकर उसने उस आदमी को देने को कहा । थोड़ी देर बाद

कोई दखल न मिली ।

अब सूर्यप्रसाद ने पुकारा, "सत्यनारायण, सत्यनारायण!"

तब जाकर अन्दर से जवाब मिला, "ओह, तुम हो?"

"हाँ, हाँ! किवाड़ खोलो, तुम से बात करनी है ।" पिता ने कहा ।

"ना, मैं इस समय सो रहा हूँ; बातें रात में होंगी ।" पुत्र ने किवाड़ खोलने से इन्कार करते हुए कहा ।

इसपर पुत्र ने धमकाने के स्वर में कहा, "खोलते हो या नहीं?" मगर इतने में नौकर वहाँ पहुँचा और उसके कमीज़ की बाँह पकड़कर वहाँ से उसे घसीट ले गया ।

"सुनो, तुम्हारा व्यवहार ठीक नहीं है,

और एक आदमी ने आकर कहा कि, उसे सूर्यप्रसाद से बीस रुपये वसूलने हैं । उसको भी बीस रुपये दिलवाकर भेज दिया गया । फिर कोई एक समस्या लेकर वहाँ आ धमका; मगर इस बार सत्यनारायण कमरे से बाहर नहीं निकला ।

ये सारे कार्य सत्यनारायण के लिये सरदर्द का कारण बन गये, लेकिन इन सब से बढ़कर उस के लिये भय का कारण बन गया कि अब घर के नौकर और रसोइन भी उसके बारे में सन्देह करने लगी थी । बीच बीच में उसकी ओर तीव्र दृष्टि डालकर मानो कुछ परख रही थी । अब तक तो वह हिम्मत बटोरकर सोच रहा था कि उस के प्रति कोई शक नहीं करेगा । मगर अब उसकी हिम्मत टूटती जा रही थी । उसके व्यवहारों व वार्तालापों में भी उसके लक्षण प्रकट हो ही रहे थे । दर असल किसी भी रूप में संदेह पैदा नहीं होना चाहिये था, और अगर पैदा होता ही तो पल भर में मिट भी सकता था । यह परिवर्तन केवल अन्दर से होता तो कोई बात नहीं थी, लेकिन मुश्किल यह थी कि वह थोड़ी मात्रा में भी पिता जैसा व्यवहार नहीं कर रहा था । प्रारंभ में वह अपने पिता का चेहरा देखकर उसे पहचान नहीं पा रहा था, लेकिन अब उसको देखते ही वह पहचानने लगा था । आठ-नौ वर्ष की आयु के कोमल मुखमण्डल पर पचास वर्ष की अधेड़ अवस्था की छाया प्रतिबिंबित हो रही थी । दर्पण में देखने पर उसे अपने चेहरे पर भी बच्चे के से भाव नज़र आ रहे थे । इन लक्षणों को अन्य लोग भी देख ही रहे होंगे न? रसोइन ने तो अवश्य ही देखे होंगे ।

धीरे धीरे सूर्यास्त भी हो गया । चारों तरफ अंधेरा फैल गया; मगर सत्यनारायण ने कमरे के बाहर कदम रखने का साहस नहीं किया । उसके पिताजी से मिलने रात में भी बड़ी देर तक कोई न कोई आते ही रहेंगे ।

आठ बजे के करीब रसोइन ने छत पर प्रवेश करके बताया, "बाबूजी, मुन्ना अभी तक घर नहीं लौटा है ।"

"अरे, यह तुम क्या कह रही हो? क्या पाठशाला से अभी तक घर नहीं लौट आया?" सत्यनारायण ने पूछा ।

"दोपहर को पाठशाला गया ही नहीं वह । मैं ने सोचा था कि, कहीं खेलने गया होगा ।"

"लड़के के बारे में चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। आ जाएगा वह। आप खाना खा लीजिये।" रसोइन ने कहा।

"मैं थोड़ी देर बाद खाना खाने आऊँगा।"– सत्यनारायण ने उसकी बात टाल दी।

"क्यों नहीं खाएँगे? वैद्य ने कहा है न, कि खाने के बाद कम से कम दो घंटे तक सोना नहीं चाहिये? जल्दी थोड़ा-बहुत खा लीजिये। वैसे ही आप की तबियत आज कुछ ठीक नहीं है।" यह कहकर रसोइन खाना परोसने गयी।

सत्यनारायण भी कोई प्रतिवाद किये बिना जाकर खाने बैठ गया। हाथ-मुँह धोकर वह अपने कमरे की ओर निकल ही रहा था, कि कोई बुज़ुर्ग उसे पुकारते वहाँ आ पहुँचा, "क्यों बे सूर्यप्रसाद?"

उसकी आवाज़ सुनते ही सत्यनारायण का कलेजा काँप उठा। वह आगंतुक एक वकील था, जो कि उसके पिता का बचपन का साथी था। पिता के अदालत संबंधी सारे मामले यही देखा करता था। वैसे वह अक्सर तो नहीं आता था, पर जब भी आता, पिताजी से कुछ गुफ्तगू करके चला जाता था। पिताजी भी अपने कामों में चाहे कितने भी व्यस्त क्यों न हों, मगर सब छोड़कर तत्काल वकील से अवश्य बातें किया करते थे।

इन्हीं कारणों से सत्यनारायण वकील परमानन्द जोशी के साथ ऊपरी मंजिल पर पहुँचा। कुर्सीपर बैठकर वकील ने अनेक

उत्तर में रसोइन ने कहा।

"तुम ने उसे डाँटकर स्कूल क्यों नहीं भेज दिया?" सत्यनारायण ने पूछ लिया।

"अब वह डाँट-डपटने जैसा नटखट नहीं रहा। अब मैं आप पर नाराज़ हो सकती हूँ, मगर उसका तो चेहरा देखने पर भी मुझे डर लगने लगा है।" रसोइन ने कहा।

मैं ने जो सोचा था, वही होने लगा है। अब सच्चाई अधिक समय तक गुप्त नहीं रह सकती। यह सोचकर सत्यनारायण को डर सा होने लगा।

"न मालूम कहाँ गया है।" सत्यनारायण ने चिन्ता प्रकट की। उसके मन में यह डर बना रहा कि उसका पिता कुछ न कुछ उपाय करके सत्य प्रकट करेगा ही।

बातें कहीं । सभी अदालत संबंधी थीं वे । इतनी सारी बातों का संक्षेप में इतना ही अर्थ उसके ध्यान में आया कि, कल सूर्यप्रसाद को अदालत में जाना है और वहाँ उसकी गवाही अत्यन्त महत्त्व रखती है । किन प्रश्नों का कैसा जवाब देना है, ये सारी बातें परमानन्द जोशी ने उसे विस्तारपूर्वक बता दीं । मगर सत्यनारायण की समझ में एक भी बात नहीं आयी । वह सोचने लगा—कल अदालत में हाज़िर रहे, या कोई बहाना बनाकर अपने को बचा लें ।

रात दस बजे तक वार्तालाप करके परमानन्द जोशी चला गया । मगर सत्यनारायण को देर रात तक नीन्द नहीं आयी । आख़िर उसके पिता का क्या हुआ है; अदालत में क्या होगा? यही चिन्ता उसको नीन्द न आने का कारण थी ।

इन सब बातों पर विचार करते करते अचानक सत्यनारायण के मन में अपने पिता के प्रति आदरभाव उत्पन्न हुआ । यह दुनिया उसके पिता की है, उसकी नहीं! इसलिये इन मामलों में अपना विचार करना अनावश्यक है । उसने अपने पिता को समझने का आजतक प्रयत्न ही नहीं किया था । पिता के प्रति तो आजतक उसने अन्याय ही किया है । आख़िर पिताने उसके प्रति अपकार ही क्या किया है? केवल यही तो कहा था—ठीक से पढ़ लो, बड़ों का आदर करो, श्रध्दा-भक्ति व भय को अपनाओ । पिताजी पढ़े-लिखे होने के कारण ही तो इतने सारे काम संभाल लेते हैं

न? इतना सोचने पर अब उसके मन में एक विचार जाग उठा—'भगवान करे, और मैं फिर बालक बन जाऊँ !'

ठीक उसी समय सूर्यप्रसाद घर की सीढ़ियों पर बैठा हुआ था अँधेरे में । बात दर असल यों हुई ।—सूर्यप्रसाद ने ढ़ाई बजे की गाड़ी पकड़ ली । दो-तीन स्टेशन पार करते ही टिकट कलेक्टर ने डिब्बे में घुसकर उसे अपना टिकट दिखाने को कहा । यदि असल में वह लड़का ही होता तो टिकट कलेक्टर को देखकर घबराता नहीं, पर वह तो सारे कायदे-कानून जानता था, इसलिये उस चेकर को देखते ही उसने चेहरा ऐसा बनाया कि मानों कोई अपराध कर बैठा हो । उसकी ज़ेब में तो एक कौड़ी भी नहीं थी । दो-चार

चपत जड़ाकर चेकर ने उसे गांड़ी से उतार दिया ।

अब लाचार होकर भूख-प्यास से तड़पते हुए सूर्यप्रसाद पैर घसीटते हुए सोलह मील पैदल चलकर रात के ग्यारह बजे घर पहुँचा । दरवाज़े पर दस्तक देकर घर में से किसी को जगा दे, तो तरह-तरह के सवाल कर बैठेगा । इसलिये वह बाहर ही सीढ़ियों पर बैठकर आगे के कार्यक्रम के बारे में सोचने लगा । अब एक दिन भी बालक के रूप में रहना नामुमकिन होगा । यह दुनिया बच्चों की नहीं । किसी समय वह भी बालक था, पर वह उनके सुख-दुखों की बातें बिलकुल भूल बैठा है । उसने अपने बेटे के हठ ही देखे; लेकिन न मालूम वह कैसी यातनाएँ झेल रहा है । इस बारे में तो उसने कभी सोचा ही नहीं । उसको प्यार से पुचकार के जाने कितने दिन बीत गये; कोई अपनी ही संतान के साथ भला ऐसा कठोर व्यवहार करता है? भगवान की कृपा से यदि वह पूर्व रूप को प्राप्त करेगा, तो बच्चे के प्रति खूब वात्सल्य दिखाने का प्रयास करेगा । उसे रत्ती भर भी कष्ट नहीं होने देगा ।

ये सारी घटनाएँ प्रत्यक्ष देखनेवाली देवी लक्ष्मी ने सत्यनारायण-स्वामी से बिनती की, "नाथ, इन दोनों की इच्छाएँ पूरी कीजिये न!"

स्वामीजी ने भी लक्ष्मी देवी की बात मान ली । और देखते ही देखते सीढ़ियों पर बैठा सूर्यप्रसाद फिर बूढ़ा बन गया और कमरे में लेटा सत्यनारायण फिर बालक के रूप में बदल गया!

देवी लक्ष्मी ने कहा, "अब ये दोनों सुखी रहेंगे ।"

"तुम अभी स्वयं देखोगी—क्या होनेवाला है ।" स्वामीजी ने कहा ।

सूर्यप्रसाद सीढ़ियों पर खड़ा हुआ । उस को महसूस हुआ कि वह काफी ऊँचाई तक ऊपर उठा है । मगर अभी तक उसे मालूम नहीं था कि उसकी आकृति फिर से बदल गयी है । दरवाज़े पर ज़ोर से दस्तक दे, तो घर के सब लोग जाग पड़ेंगे और नाना प्रकार के प्रश्नों की बौछार करेंगे । एकाध व्यक्ति ही हो, तो कुछ न कुछ जवाब दिया जा सकता है—ऐसा सोचकर उसने धीरे से दरवाज़े पर दस्तक दी ।

रसोइन ने आकर किवाड़ खोल दिये। सूर्यप्रसाद को देख चकित होकर उसने पूछा, "बाबूजी, आप तो कमरे के अन्दर लेटे हुए थे, घर के बाहर कब निकले? किवाड किसने बन्द किये अन्दर से?" मगर सूर्यप्रसाद को रसोइन के प्रश्न बिलकुल सुनाई नहीं दिये। इतने समय बाद रसोइन ने उसे आदर से 'बाबूजी' कहकर पुकारा था। उसने अपने चेहरे पर हाथ फेर के देखा, तो उसके हाथ को मूँछों व चश्मे का स्पर्श हुआ; सिर गंजा था! अब उसकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। वह कुछ कहने को हुआ, पर उसके मुँह से बोल ही नहीं फूटे।

उधर रसोइन की आवाज़ सुनकर सत्यनारायण सीढ़ियाँ उतरकर नीचे चला आया। अपने पिता को सामने देख वह चकित रह गया। झट उसने अपने हाथ-पैरों पर दृष्टि दौड़ाई।

सत्यनारायण को सामने देखते ही सूर्यप्रसाद का क्रोध उमड़ पडा। उसने सोचा, इसी कम्बख्त ने तो उसे इस प्रकार अनेक कष्ट दिये। उसको पाठशाला में भिजवा दिया, अध्यापक से पिटवाया, उसका शरीर चुराया। उसके कमरे पर अधिकार करके उसकी चाभियाँ और धन तथा सब कुछ छीन लिया है।

"अरे कम्बख़्त! क्या अब तेरा खेल समाप्त हो गया?" सूर्यप्रसाद गरज.उठा।

सत्यनारायण भी अपने पिता को देख एकदम क्रोध में आ गया। उस के पिता ने ही उसे ज़बरदस्ती बूढे का शरीर सौंप दिया। इस अवस्था में खाने व खेलकूद की कोई गुंजाइश तक नहीं। फिर भी वह बालक बूढ़ा शरीर लेकर घसीटता रहा।

"मेरा खेल नहीं, तुम्हारा ही खेल समाप्त हो गया है।" झल्लाकर सत्यनारायण ने कहा।

"देखती हो न, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी कमियों को आप ही सुधार लेना होगा। हम कुछ नहीं कर पायेंगे। हम ने इन्हें दो वर दिये थे, उनकी बात भूलकर ये दोनों पूर्ववत् व्यवहार करने लगे हैं।" सत्यनारायण-स्वामी ने देवी लक्ष्मी से कहा।

(समाप्त)

दोषी कौन ?

गुणपुर में एक सब्जी बेचनेवाला दूकानकार था । उसने एक दिन ग्रामाधिकारी के पास शिकायत की, "हुज़ूर आप तो जानते हैं कि हमारे गाँव की वह कमला दूध, दही, मक्खन वगैरह बेचती है । मैंने उसे कहा है कि हररोज़ एक किलो मक्खन मेरे घर भेजा करो । लेकिन इन कुछ दिनों से वह मुझे धोखा देने लगी है । वह जो मक्खन देती है, उसे मैं तराजू में तोलकर देखता हूँ तो रोज़ वह एक किलो से कम ही देती है !"

यह शिकायत सुनकर ग्रामाधिकारी अचरज में पड़ गया । वह तो कमला को अच्छी तरह जानता था । वह एक ईमानदार औरत थी । फिर भी उसने कमला को बुला भेजा और पूछा, "कमला, बताओ तो तुम मक्खन कैसे तौलती हो ?"

इसपर कमला ने जवाब दिया, "महाराज, मैं हररोज़ इस दूकानदार के यहाँ से एक किलो तरकारी खरीदकर घर जाती हूँ । दूकानदार का पोता जब मक्खन लेने आता है, तब मैं वही तरकारी तराजू के एक पलड़े में डालकर दूसरे में मक्खन तौलती हूँ ।"

कमला का उत्तर सुनकर ग्रामाधिकारी ने गुस्से में आकर दूकानदार से पूछा, "अब तुम को मालूम हुआ न, कौन किस को धोखा देता है ?"
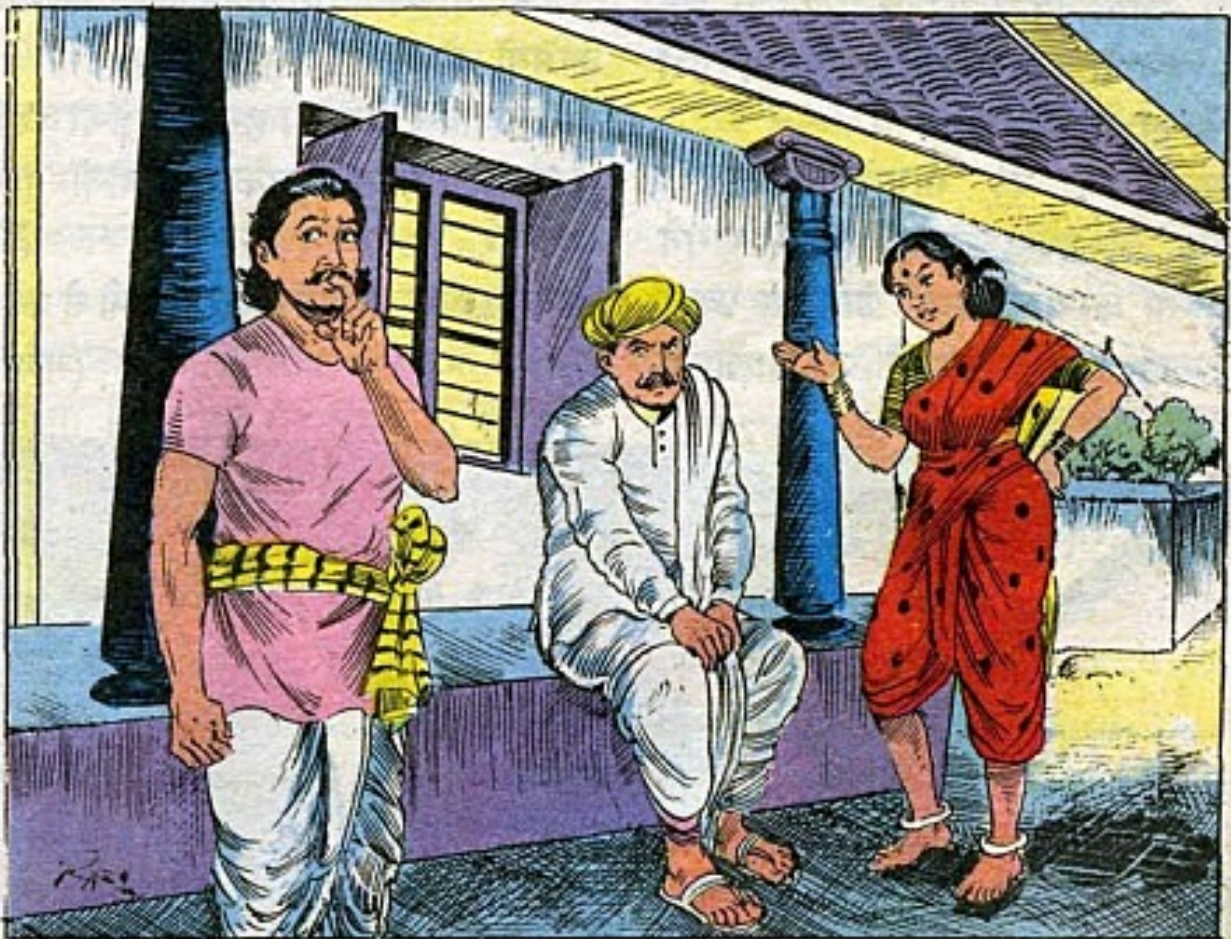
राजनीति

दृढ़व्रती विक्रमार्क वृक्ष के पास लौट आया, वृक्ष पर से शव उतार कर अपने कंधे पर लाद लिया और हमेशा की भाँति मौन धारण कर स्मशान की ओर चलने लगा। शव में वास करनेवाला बेताल बोल उठा, "राजन, मेरे मन में एक शंका पैदा हो रही है कि, आप आज विद्यमान बाकी अन्यान्य राजाओं और अपनी प्रजा द्वारा खुद को महान शासक व बड़ा धर्मात्मा राजा कहलवाने की अभिलाषा रखते हैं, साथ ही आप यशोकांक्षी भी हैं। आप की अगर यही तमन्ना है, तो उसे पूरी करने के अनेक सरल मार्ग हैं। स्मशान में, अर्ध रात्रि के समय इस प्रकार कष्ट उठाने की कोई ज़रूरत नहीं है। इसके उदाहरण स्वरूप मैं आप को शरणागत नामक राजा की कहानी सुनाता हूँ। सुनते सुनते श्रम भी भूल सकेंगे आप।"

बेताल कहानी सुनाने लगा।

वैशाली राज्य के शासक शरणागत

बेताल कथा

स्वभाव से अत्यन्त शान्तिप्रिय थे । अपने राज्य की चतु:सीमाओं पर स्थित सभी राज्यों के राजाओं से वे खूब स्नेहसम्बन्ध रखते थे । किसी राज्य से वे शत्रुता न करते थे । लोग उनको अजातशत्रु कहा करते थे । साथ ही क्षत्रियोचित सभी विद्याओं में प्रवीण भी थे ।

एक बार सौवीर राज्य के राजा कालवर्मा ने वैशाली राज्य को हड़पने के लिये एक योजना बनायी । राजा शरणागत की शान्तिप्रियता कालवर्मा को कायरता प्रतीत हो रही थी । उसके विचार में राजा को युध्दप्रिय होना चाहिए । अपनी शूरता का बार-बार प्रदर्शन न करे वह राजा ही क्या? कालवर्मा ने सेना-संगठन कर के अचानक ही वैशाली की सीमा पार की । खबर पाते ही शरणागत ने अपने दूत को भेजकर इस प्रकार संदेश भेजा– "आप की राज्य-लालसा के लिये हमारे दोनों देशों के हज़ारों सैनिकों की बलि चढ़ाना मुझे कतई पसन्द नहीं । युध्द के कारण आज तक कई नारियाँ विधवा होती आयीं हैं । यह पाप क्यों करें? आप को यदि अपनी शक्ति पर गर्व है तो आप मेरे साथ द्वन्द्व-युद्ध कीजिये । उस युद्ध में अगर मैं पराजित हो जाऊँ, तो अपना राज्य मैं आप को सौंप कर आप का बन्दी बन जाऊँगा । अगर आप हार गये, तो अपना राज्य मुझे सौंप दीजिये ।"

कालवर्मा ने शरणागत की यह शर्त मान ली । शरणागत के दुर्ग के सामने एक विशाल मैदान में अखाड़े का इन्तज़ाम किया गया ।

शरणागत और कालवर्मा ने अपनी अपनी तलवारें खींचकर युद्ध आरम्भ किया । चारों तरफ इकठ्ठे हुए लोग संभ्रम और आश्चर्य के साथ उनका यह युद्ध देखने लगे । दोनों चतुर योध्दा थे । कुछ समय तक दोनो तुल्यबल लगे । दोनों की खूब पैंतरेबाजी चली । कहा नहीं जा सकता था कि किसकी जीत होगी और किसकी हार? थोड़ी देर बाद कालवर्मा के हाथ से उसकी तलवार उछलकर दूर जा गिरी । शरणागत की तलवार कालवर्मा का कण्ठ स्पर्श कर रुक गयी ।

कालवर्मा ने अपनी पराजय मान ली और कहा, "हमारी शर्त के अनुसार मुझे बन्दी बना कर आप मेरे राज्य पर अधिकार कर

लीजिये । मैं अपनी हार मंज़ूर करता हूँ । आप निश्चय ही महान् योध्दा हैं और मेरे राज्य पर शासन करने योग्य हैं । अब मुझे राजा होने का कोई अधिकार नहीं है ।"

इसपर कुछ कहे बगैर शरणागत कालवर्मा को अपने सभाभवन में ले गये, उसका उन्होंने अपूर्व सत्कार किया और कहा, "मुझे आप के राज्य की कोई आवश्यकता नहीं है । शर्त पर अड़े रहने की कोई आवश्यकता नहीं है । मैं आप के साथ वही बर्ताव करूँगा जो एक राजा को दूसरे राजा के साथ करना चहिए । आप ही अपने राज्य पर शासन कीजिये ।"

कालवर्मा ने विस्मय में आकर कहा, "मैंने आप के प्रति अत्यन्त मूर्खता पूर्ण व्यवहार किया है । उस मुझे आप क्षमा कैसे कर रहे हैं?आप सचमुच बड़े उदार हैं । आपकी सदाशयता की मैं कद्र करता हूँ । आप आदर्श राजा हैं ।"

"आप अगर मूर्ख होते, तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करने की बात कबूल नहीं करते । जनता के प्राणों की हानि होने से बचाकर, मेरे साथ द्वन्द्व-युद्ध करके आप ने अपनी मानवता का परिचय दिया है; इसलिये मैं आप का यह सत्कार कर रहा हूँ ।" यों समझाकर शरणागत ने कालवर्मा को सादर उस के राज्य में भिजवा दिया ।

इस घटना से बाकी सारे राजाओं के बीच शरणागत का यश और प्रतिष्ठा और ही बढ़ गई ।

इसके थोड़े दिन बाद वैशाली राज्य में चोरियाँ और डकैतियाँ अचानक हद से ज़्यादा बढ़ गयीं । जनता ने इस संबंध मे राजा से शिकायत की ।

शरणागत ने चोर व डाकुओं को बन्दी बनाने का आदेश अपने अधिकारियों को दे दिया । मगर अधिकारी उनको पकड़ नहीं पाये । वे इतना ही जान सके कि डाकुओं के नेता का नाम नागभैरव है और वह नगर की पूर्वी दिशा में स्थित जंगल में रहता है ।

शरणागत ने राज्य में ढिंढ़ोरा पिटवाया कि नागभैरव को पकड़नेवाले को दस हज़ार मुद्राएँ पुरस्कार स्वरूप दी जायेंगी । प्रजा के कुछ साहसी युवकों ने इस कार्य को प्रवृत्त होकर अपने प्राण गँवाये ।
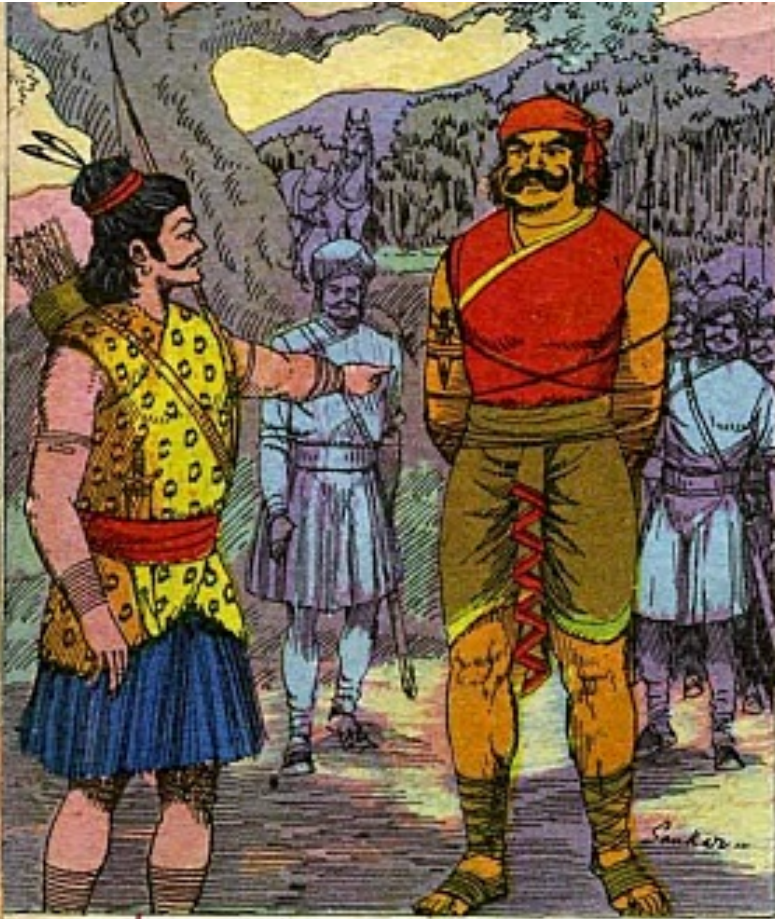
आखिर शरणागत को खुद ही इस कार्य को अपने हाथ लेना पड़ा । एक दिन शिकारी वेष धारण कर और दस साहसी योध्दाओं को अपने पीछे आने को कहकर उसने जंगल में प्रवेश किया ।

शरणागत जंगल में संचार कर रहा था, तब अचानक पास की झाड़ी में से एक शेर ने उस पर आक्रमण किया । वह अपनी तलवार भी म्यान से बाहर निकाल नहीं पाया । इतने में सहसा शेर चित गिरकर तड़पने लगा ।

उसी समय कहीं से ऊँचे कद का एक बलिष्ट युवक अपनी नुकीली मूँछों पर ताव देते हुए राजा के समीप आ खड़ा हुआ और गरजकर उसने पूछा, ''कौन हो तुम? शिकारी हो? नाम क्या है तुम्हारा?''

''हाँ मैं एक शिकारी हूँ, मेरा नाम नीलकण्ठ । मेरे प्राणों की रक्षा करनेवाले तुम कौन हो?'' शरणागत ने उस आदमी से पूछा ।

''मेरा नाम नागभैरव है । केवल इस राज्य की जनता ही नहीं, बल्कि यहाँ का राजा भी मेरे नाम से डरता है ।'' उस युवक ने उत्तर दिया. ।

इतने में गुप्त रूप से राजा का पीछा करनेवाले उसके सैनिक वहाँ आ पहुँचे । तुरन्त नागभैरव को पकड़ने की आज्ञा शरणागत ने उनको दी । सैनिकों ने भी एक साथ हमला कर नागभैरव को बन्दी बनाया ।

अब बन्दी बने नागभैरव ने पहचान लिया कि शेर का शिकार बनने से बचा हुआ यह शिकारी खुद राजा शरणागत है । दाँत पीस कर उसने राजा से कहा, ''महाराज, आप यह बात भूल रहे हैं कि मैं आप का प्राणदाता हूँ । तभी तो आप ने मुझे धोखा देकर बन्दी बनाया है । दस लोगों ने हठात् एक ही व्यक्ति पर हमला करके उसे बन्दी बनाना कोई बड़ी बात नहीं है । आप यदि साहस व पराक्रम रखते हैं तो मेरे साथ खड्ग-युद्ध के लिये तैयार हो जाइये ।''

डाकू की बातों की ओर आनाकानी करते हुए शरणागत ने सैनिकों से कहा, ''इस डाकू को सावधानी से ले जाकर कारागार में डाल दो ।'' इतना कह कर वह खुद एक अश्व पर सवार होकर और दो सैनिकों के साथ नगर की ओर निकल पड़ा ।

इस घटना के एक महीने बाद शरणागत जब अपने कक्ष में विश्राम कर रहा था, तब एक सिपाही ने प्रवेश करके कहा, ''प्रभु, किसी अत्यावश्यक कार्य से आप से मिलने कोई आये हुए हैं ।''

''ठीक है, भेज दो उन्हें अन्दर ।'' राजा ने अनुमति दी ।

थोड़ी ही देर में गेरुए वस्त्र धारण किये, लंबी दाढ़ी व मूँछों वाले एक दृढकाय व्यक्ति ने वहाँ प्रवेश कर के कहा, ''मेरा नाम कपालकंठ है । मैं एक मान्त्रिक हूँ । यक्षिणी देवी के लिये एक यज्ञ करने का संकल्प मैंने किया है । इसके लिये प्रतिदिन एक बालक के हिसाब से एक महीना भर बालकों की बली चढ़ानी होगी । वैसे बालकों को प्राप्त करना मेरे जैसे महान शक्तिशाली मान्त्रिक के लिये बायें हाथ का खेल है । परन्तु यह कार्य अगर राजा के द्वारा संपन्न हो जाए, तो देवी अत्यधिक सन्तुष्ट होगी । आप की सहायता के बदले में मैं आप को आसेतु हिमाचय प्रदेश का चक्रवर्ती बनाऊँगा ।''

मान्त्रिक की बातों से शरणागत बहुत ही क्रोध में आया और दीवार पर लटकी तलवार लेकर वह मान्त्रिक की ओर बढ़ा । मगर कपालकंठ के अपनी मन्त्र शक्ति के बल से तलवार को भस्म कर डाला । फिर उच्च स्वर में वह बोला, ''महाराज, मेरा सामना करके मुझको परास्त करने वाला व्यक्ति इस पृथ्वी पर कोई है ही नहीं । आप मेरी सहायता नहीं कर रहे, यह आप ही का दुर्भाग्य है ।'' और तेज़ गति से वह वहाँ से चला गया ।

इस के दूसरे ही दिन से राज्य में छोटे-छोटे

बच्चे गायब होने लगे। शरणागत ने पहचान लिया कि, यह करतूत कपालकण्ठ की ही है । उसके यज्ञ की जगह ढूँढ़ने के लिये अपने गुप्तचरों को शरणागत ने चारों ओर भेज दिया ।

राजा को समाचार मिला कि कपालकण्ठ एक घने जंगल में एक विशाल पर्वत की गुफ़ा में निवास करता है । फिर राजा अकेले ही उस गुफा में पहुँच कर एक शिला स्तम्भ के पीछे छिप गया ।

थोडी देर में कपालकण्ठ एक बालक को लेकर वहाँ पहुँचा । उसने लड़के को यक्षिणी देवी की मूर्ति के पास खड़ा किया और खुद आँखें मूँदकर कोई स्तोत्रपाठ करने लगा । मौका पाकर शरणागत ने उसके पीछे पहुँचकर अपनी तलवार के एक ही वार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया !

दूसरे ही क्षण वह प्रतिमा दिव्य तेज से दमक उठी, घंटियों की आवाज़ सुनाई दी और प्रतिमा के मुँह से शब्द निकले, "हे महावीर ! तुम्हारा साहस अद्वितीय है । लो, मैं तुम्हें यह दिव्य खड्ग प्रदान करती हूँ ।"

शरणागत ने वह दिव्य खड्ग ग्रहण किया और बालक को लेकर वह अपने महल लौट आया ।

यह कहानी सुनाकर बेताल राजा से कहने लगा, "राजन्, मेरे मन में एक शंका है । शरणागत ने धर्मात्मा और महावीर के रूप में यश संपादन करने की इच्छा से एक योजनाबद्ध कार्यों की मालिका पूर्ण की । अपने देश पर आक्रमण करनेवाले सौवीर राजा कालवर्मा को क्षमा करके मुक्त कर किया । कालवर्मा के साथ आव्हान देकर द्वन्द्व-युद्ध करनेवाले इसी शरणागत ने नामभैरव का खड्ग-युध्द का आव्हान स्वीकार नहीं किया । शेर के हमले से खुद को बचानेवाले नागभैरव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के बदले उसे कारागार में बन्दी बनाया । मान्त्रिक कपालकण्ठ का धोखे से वध किया ।—यह सब उसने ऐसा क्यों किया ? इसके पीछे क्या कोई रहस्य छिपा है ? मेरे इन संदेहों का जवाब जानकर भी मेरा समाधान न करेंगे, तो आप का मस्तक फूट कर टुकड़े टुकडे होकर बिखर जाएगा ।"

विक्रमार्क ने जवाब दिया "शरणागत का व्यवहार राजनीति से जुड़ा हुआ है । इस में व्यक्तिगत प्रतिष्ठा या कीर्ति के लिये कोई गुंजाइश नहीं है । किसी भी प्रकार अपने राज्य की रक्षा करना यही एक राजा के नाते उसका कर्तव्य है । इसी विचार से प्रेरित शरणागत ने कालवर्मा के साथ द्वन्द्व करके दोनों पक्षों को नाहक प्राणहानि से बचाया । पराजित कालवर्मा को बन्दी बनाने से उसके मित्रों द्वारा फिर हमले का ख़तरा था । उल्टे कालवर्मा को मुक्त करने के कारण अन्य राजाओं ने शरणागत की उदारता की प्रशंसा की । इससे शान्ति भी प्रस्थापित हुई । राजा शरणागत का यह काम उसकी अतीव राजनैतिक चतुरता का परिचायक है ।

एक राजा को किसी डाकू के साथ स्वयं खड्ग युद्ध करने की कोई ज़रूरत नहीं । ऐसा करना एक राजा के लिये खुद को अपमानित करने जैसा होगा । नागभैरव ने धन के लालच में अनेक लोगों के प्राण हर लिये हैं । राजा का परिचय तक न होने की अवस्था में उसने एक प्राणी की जान बचायी है, तो उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना एक डाकू को राजा का स्थान दिये जैसी बात होगी । अतः राजा ने उसके प्रति जो व्यवहार किया वह सर्वथैव उचित है । अगर वह डाकू के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता तो वह बड़ी ग़लती होती । फिर जो लोग मायावी या मान्त्रिक हैं उनके सामने वीरता किसी काम की नहीं रहती । उसका पारिपत्य उसी ढंग से होना चाहिये, जैसा कि शरणागत ने किया है । ऐसे मान्त्रिक का वध करने का प्रयत्न करना भी एक साहस कार्य ही माना जाना चाहिये । इसी कारण देवी यक्षिणी ने शरणागत को 'महावीर' कहा । किसी भी दृष्टिकोण से विचार करने पर शरणागत का यश व प्रतिष्ठा सुलभ मार्ग से प्राप्त नहीं मानी जाएगी ।"

जवाब देकर राजा के मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः वृक्ष पर जा बैठा ।

(कल्पित)

वारिस

शिवपुरी राज्य पर राजा धर्मनन्दन का शासन था । उसके दो पत्नियाँ थीं । बड़ी रानी का नाम था सुवर्णदेवी और छोटी का था तेजोवती । सुवर्णदेवी के पुत्र का नाम विजयसेन था और तेजोवती के पुत्र का नाम सत्यसेन ।

राजा धर्मनन्दन वृध्द हो चुका और उसने अपने राज्य का भार दोनों में से किसी एक पुत्र को ही सौंपने का निश्चय किया । मगर उस संदर्भ में उसके सामने एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई । बड़ी रानी का पुत्र विजयसेन छोटी रानी के पुत्र से उमर में छोटा था, फिर भी ज्येष्ठ रानी का पुत्र होने के नाते, ज्येष्ठ रानी ने अपने पुत्र को राज्य दिलवाने का आग्रह किया । उसी प्रकार छोटी रानी ने ज़िद पकड़ी कि छोटी का पुत्र होते हुए भी सत्यसेन ही राजा का ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते, उसीका राज्य पर अधिकार है ।

राजा किसी भी रानी के मन को दुखाना नहीं चाहता था, मगर मन ही मन वह बड़ी रानी के पुत्र विजयसेन को अधिक प्यार करता था ।

इसलिये उसने अपने मन्त्री विद्यासागर को बुलाकर अपनी समस्या सुनायी और कहा कि वह राज्य के सभी प्रमुखों को स्वीकार हो ऐसा हल ढूँढ़ निकाले । साथ ही उसने यह भी कहा कि वह खुद ज्येष्ठ रानी के पुत्र विजयसेन को राज्यगद्दी दिलवाने के पक्ष में है ।

शिवपुरी के पड़ोसी देश गंगापुर पर अमरेन्द्र नामक राजा राज्य करता था । वह छोटी रानी तेजोवती का भाई था । उसके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये वह तेजोवती के पुत्र को अपना दत्तक-पुत्र बनाकर अपना राज्य उसे सौंपना चाहता था । साथ ही उस के मन में यह विचार भी था कि ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते शिवपुरी का राज्य भी अपने भानजे

प्रदीप सिंह

को ही मिले ।

देशिकाचार्य नाम का एक पण्डित शिवपुरी और अन्य कुछ पड़ोसी राज्यों की समस्याओं के मामले में सलाह दिया करता था । वह न्यायशास्त्र में बहुत बड़ा विद्वान था । इसलिये उसके न्याय-निर्णय को सभी योग्य मानते थे ।

अमरेन्द्र ने देशिकाचार्य को निमन्त्रित करके पूछा कि शिवपुरी राज्य पर राज्य करने की अर्हता सत्यसेन रखता है या नहीं ।

देशिकाचार्य ने इसपर सुझाव दिया कि, "वैसे सत्यसेन छोटी रानी का पुत्र होते हुए भी आयु में बड़ी रानी के पुत्र से बड़ा है; इसलिये शिवपुरी राज्य पर उसी का अधिक हक़ बनता है । फिर भी यह एक अत्यन्त जटिल समस्या है, इसलिये इस समस्या पर खूब सोच विचार कर के तभी अपना निर्णय सुनाऊँगा ।"

शिवपुरी राज्य के मन्त्री को जब यह समाचार मिला, तब उसने राजा अमरेन्द्र के पास जाकर निवेदन किया, "महाराज, मुझे ज्ञात हुआ है कि, आप अपने भानजे सत्यसेन को शिवपुरी राज्य का वारिस बनाने का संकल्प रखते हैं । इसलिये आप बड़ी रानी के पुत्र विजयसेन को दत्तक-पुत्र बनाकर उसको अपने राज्य का वारिस घोषित कर दीजिये । आप का राज्य शिवपुरी राज्य से छोटा अवश्य है, मगर हम बड़ी रानी को समझाने का प्रयत्न करेंगे कि आप अपने पुत्र विजयसेन को शिवपुरी का राजा बनाने का विचार

त्याग दे ।"

मगर अमरेन्द्र ने इस सुझाव को अस्वीकार करके स्पष्ट कहा, "यह बात संभव नहीं है । मैं अपने भानजे को ही दत्तक बनाकर अपना राज्य सौंप दूँगा । शिवपुरी राज्य के मामले में आप लोग न्याय तथा धर्मसंगत गहराई से विचार करके किसी निर्णय पर पहुँच जाइये ।"

इसके बाद अमरेन्द्र को लगा कि अब विलम्ब करने पर लोग दबाव डालेंगे कि बड़ी रानी के पुत्र को ही वह गोद ले लें । इस डर से उसने तत्काल शिवपुरी राज्य के राजा धर्मनन्दन से मिलकर अनुरोध किया कि वे अपनी छोटी रानी के पुत्र सत्यसेन को—जो उसका भानजा है—उसे दत्तक के रूप में

ग्रहण करने की अनुमति प्रदान करें ।

राजा धर्मनन्दन ने अपने मन्त्री विद्यासागर से इस विषय में सलाह माँगी ।

''महाराज, आप सत्यसेन को दत्तक रूप में देने के लिये स्वीकृति दे दीजिये । इस के पीछे एक खास कारण भी है ।'' विद्यासागर ने उत्तर में कहा ।

धर्मनन्दन की स्वीकृति पाकर अमरेन्द्र ने शास्त्रविधि से सत्यसेन को लिया और उसे अपने देश का युवराज घोषित किया । उसका यौवराज्याभिषेक भी किया ।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् धर्मनन्दन, उसकी दोनो रानियाँ और अमरेन्द्र ने संयुक्त रूप से देशिकाचार्य को निमन्त्रण दिया ।

मन्त्री विद्यासागर ने उसे निवेदन किया, ''महानुभाव, इस समय हमें शिवपुरी राज्य के युवराज के चुनाव की जटिल समस्या को सुलझाना है । आप इस सम्बन्ध में धर्म एवम् न्यायशुद्ध विचार करके इस समस्या को सुलझाने की कृपा करें ।''

मन्दहास करते हुए देशिकाचार्य ने अपना निर्णय प्रकट किया, ''हाँ, यह बात सही है कि प्रारम्भ में यह एक जटिल समस्या थी । लेकिन अब चूँकि, अमरेन्द्र ने सत्यसेन को गोद लिया है, समस्या अपने आप ही हल हो गयी है । दत्तक-पुत्र बनकर सत्यसेन के इस राज्य से चले जाने के बाद वह अपने पैतृक अधिकार से वंचित हो गया है । इसलिये अब शिवपुरी राज्य का असली वारिस विजयसेन ही हो सकता है । इस में किसी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश ही नहीं है ।''

देशिकाचार्य के निर्णय को सब को विवश होकर स्वीकार करना पड़ा । तब जाकर अमरेन्द्र ने लालच में आकर जो ग़लती की थी, वह उसी की समझ में आ गयी । मन्त्री के सुझाव के अनुसार वह अगर विजयसेन को गोद लेता, तो उसका भानजा सत्यसेन ही विशाल शिवपुरी राज्य का राजा बन गया होता । अमरेन्द्र ने जो कुछ किया था, उसका अब उसे पछतावा होने लगा । उसे मालूम हो गया कि लालच बुरी बला है । पर तब पछताये होता क्या...?

चन्दामामा पुरवणी ११
ज्ञान का ख़ज़ाना

इस महीने का ऐतिहासिक व्यक्तित्व

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

एक विद्वान रेलगाड़ी से स्टेशन पर उतरता है। उसके हाथ में केवल एक छोटी सी बैग है। मगर उसे खुद उठाकर ले जाना उसे अच्छा नहीं लग रहा है। एक सर्व-सामान्य दिखनेवाले आदमी को प्लेटफार्म पर खड़ा देख वह पूछता है, "अरे, क्या तुम कुली हो? उठाओ इसे।" वह आदमी बिना कुछ कहे बैग उठाता है। अपने ठिकाने पहुँचने पर विद्वान को जब मालूम होता है, कि अपनी बैग ढोनेवाला और कोई नहीं, बल्कि खुद ईश्वरचन्द्र विद्यासागर है; तब वह बहुत ही शर्मिन्दा होता है।

प्रसिद्ध समाजसुधारक विद्यासागरजी का जन्म २६ सितंबर १८२० को हुआ था। जन्मस्थान था बंगाल का जिला मिदनापुर। कलकत्ते के गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के आप प्रधानाध्यापक थे। उस ज़माने में लड़कियों की शादियाँ उनकी शैशवावस्था में ही करायी जाती थीं। और उनमें से कई खुद विवाहिता होने का सत्य समक्षमें आने से पहले ही विधवा भी हो जाती थीं। विद्यासागर ने विधवाओं का पुनर्विवाह न्यायसम्मत करवाया। आप ने बहुत सी पाठशालाओं और महाविद्यालयों की स्थापना की और पाश्चात्य विज्ञान और दर्शनशास्त्र को भारत में सिखाने की शुरुआत की। आप की मृत्यु १८९१ में हुई।

वह कौन?

अँधेरी रात थी। अँधेरे में चलने के अभ्यस्त एक चोर ने एक बड़े से घर में प्रवेश किया।

घर बड़ा होनेपर भी उस में केवल एक ही व्यक्ति-एक साधु-रहा करता था। आश्चर्य की बात यह थी, कि वह आदमी दरवाज़े में कभी ताला नहीं लगाता था, न ही अन्दर से कुण्डी चढ़ाता था। चोर को यह बात मालूम थी।

चोर अन्दर आया। पास में एक जलता हुआ दिया रखकर साधु सो गया था। उसके पास में ताल के कुछ पत्ते भी थे।

रसोईघर में कुछ बर्तनों को छोड़, चोर को घर में कोई कीमती माल हासिल नहीं हुआ। मगर एक रात की कमाई के लिये उतनाही पर्याप्त समझकर, बर्तन उठाकर वह दरवाज़े तक गया। मगर यह क्या! धनुष हाथ में लिये घर की रक्षा करता हुआ कोई सामने खड़ा था! चोर ने दूसरे दरवाजे से खिसकने का प्रयास किया; मगर हाय! वहाँ भी वैसा ही एक रक्षक मौजूद था!

डर से थरथर काँपता हुआ चोर साधु के जागने तक वहीं खड़ा रहा; और उसके पैरों पर लोट गया। साधु ने कहा, "देखो भैया, तुम तो बड़े भाग्यशाली हो। तुमने जिन रक्षकों का दर्शन किया वे खुद श्रीराम और लक्ष्मण थे।"

इस पुराण-कथा का यह साधु कौन?

(पृष्ठ ३६ देखिये)

The Parliament House
Prithviraj Chauhan
DELHI
Mohammad Ghori
Qutub Minar
Shah Jahan
The Red Fort
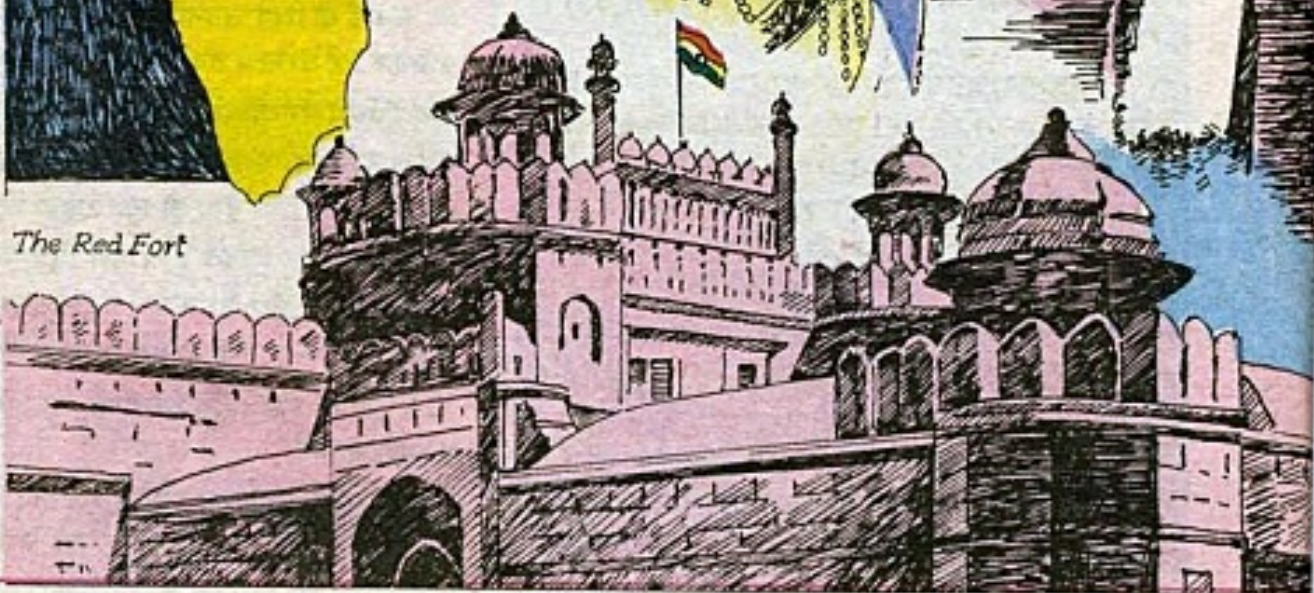
दिल्ली के सात जन्म

भारत की आज की राजधानी का शहर दिल्ली, महाभारत में वर्णित पांडवों के शहर इन्द्रप्रस्थ के स्थानपर, या उसी के बहुत निकट बसा हुआ है। दिल्ली के एक क्षेत्र को आज भी इन्द्रप्रस्थ नाम से पहचाना जाता है।

कहा जाता है कि महाभारत के ज़माने से दिल्ली शहर बार बार बाँधा गया है—कुल सात बार! सातवीं बार इस शहर को बाँधा सम्राट शाहजहाँ ने! स्वतन्त्रता के बाद दिल्ली शहर-या उसी का नया भाग 'नयी दिल्ली' काफी विस्तृत हो गया है। कहने में कोई ग़लती नहीं होगी की आज का आधुनिक दिल्ली शहर 'आठवीं दिल्ली' है। मगर फैलते हुए इस दिल्ली शहर में पहले के सातों स्थित्यंतरों की झाँकियाँ हम आज भी देख सकेंगे।

ग्यारहवीं शताब्दि में, एक शक्तिमान् राजा अनंगपाल ने दिल्ली को बहुत सुन्दर बनाया। 'लाल कोट' नाम से प्रसिद्ध, उसके किले के अवशेष, कुतुबमीनार के पास हम आज भी देख सकते हैं। दिल्ली से राज्य करनेवाला आखिरी हिन्दू राजा था पृथ्वीराज चौहान। वह बड़ा ही दिलेर और पराक्रमी था। उसके राज्य-काल में दिल्ली की शान कुछ और ही थी। कनौज की राजकुमारी संयुक्ता ने अपने पिता जयचन्द्र की इच्छा के विरुद्ध जाकर पृथ्वीराज से शादी की। जयचन्द्र को यह बिलकुल पसन्द नहीं था। इस घटना से क्रोधित जयचन्द्र ने तुर्की सुलतान मुहम्मद घोरी से हाथ मिलाकर दिल्ली पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज और मुहम्मद घोरी के बीच घमासान लड़ाई हुई। आखिर इस लड़ाई में पृथ्वीराज मारा गया और ११९२ में संयुक्ता ने खुद को झोंककर आत्महत्त्या की। दूसरे ही साल में मुहम्मद घोरी ने छलकपट से हमला कर जयचन्द्र को भी मार डाला।

जैसे अनेक राजघरानों ने दिल्ली पर राज्य किया, वैसे अनेकों ने उसे लूटा भी! लूटनेवालोंमें सब से प्रसिद्ध था पर्शिया का नादिरशाह! मयूर सिंहासन के साथ ही वह न केवल अनगिनत संपत्ति लूट कर ले गया, बल्कि उसने १७३८ में ३०,००० नागरिकों का कत्ल भी किया।

आज का दिल्ली शहर बड़ा ही साफ़-सुथरा और सुन्दर है और आसपास के कुछ देहातों के साथ वह एक छोटा केन्द्रशासित प्रदेश है। वहाँ की आबादी बासठ लाख से भी कुछ ज़्यादा ही है।
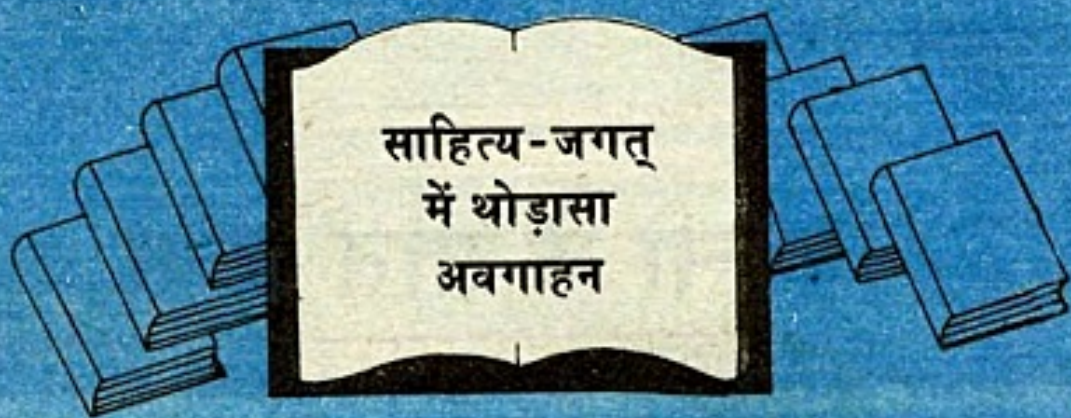
१. 'एलिस इन् वण्डरलैण्ड' के लेखक लुई केराल का असली नाम क्या है?

२. उसका व्यवसाय क्या था?

३. ग्रिम भाइयों के पूरे नाम क्या है?

४. चीन की सरकारी कामकाज़ की भाषा कौन है?

५. उस शब्द की व्युत्पत्ति क्या है?

६. दुनियाभर में लगभग कितनी भाषाएँ बोली जाती हैं?

७. वह कौन अंग्रेज़ी लेखक था, जिसने अपना लेखन-कार्य १९वीं शताब्दि में शुरू किया और २०वीं शताब्दि के मध्य तक उसे करता रहा?

८. कौन से पन्तप्रधान को साहित्य का नोबेल-प्राइज मिला?

९. कौन कवि अंग्रज़ी काव्य का जनक कहलाता है?

१०. उसकी किताब का नाम क्या है?

उत्तरावली

वह कौन?

तुलसीदास

साहित्य

१. चार्लस् लुडविक डाजसन ।

२. गणित के प्राध्यापक ।

३. जेकब ग्रिम और विल्हेम ग्रिम ।

४. मांदेरिन ।

५. भारतीय शब्द मन्त्री ।

६. एक हज़ार पाँच सौ ।

७. जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ।

८. विन्स्टन चर्चिल ।

९. जाफ़े चौसर ।

१०. द केंटरबरी टेल्स ।

नेहरू की कहानी-८

सन १९२६ के मार्च महीने में पं. जवाहरलाल नेहरू अपनी बीमार पत्नी कमला को लेकर स्विट्ज़रलैण्ड गये। उनके साथ छोटी मुन्नी भी गई। अनुकूल जलवायु के कारण कमलाजी का स्वास्थ्य सुधर गया।

योरप में रहते समय पं. जवाहरलाल नेहरू को वहाँ पर यात्रा करनेवाले श्यामजी कृष्ण वीर, राजा महेन्द्र प्रताप, मॅडम कामा इत्यादि कई भारतीय क्रान्तिकारियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

सन १९२७ में पं. मोतीलाल नेहरू योरप जाकर अपने पुत्र जवाहरलाल से मिले। फिर वहाँ से सारा परिवार मास्को पहुँचा। ज़ार के अधिकार से मुक्त हो रूस सोवियत यूनियन के रूप में विकसित हो रहा था। इस विकास के दस साल पूरे हो गये थे। उस दशम वार्षिकोत्सव में सब ने भाग लिया। यह यात्रा बड़ी उपयुक्त सिध्द हुई।
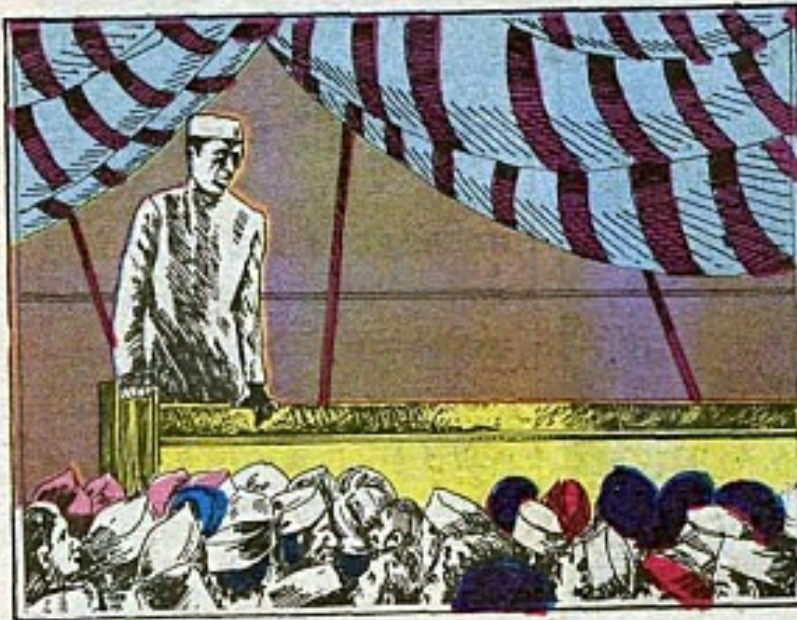
सन १९२७ के अंत में काँग्रेस का अधिवेशन मद्रास में संपन्न हुआ । पं. जवाहरलाल तब तक स्वदेश पहुँचे थे । उन्होंने कांग्रेस के महामंत्री के पद से भारत को स्वतंत्र बनाने का प्रस्ताव अधिवेशन में रखा ।

उसी साल भारत में शासन की व्यवस्था की जाँच करनेके लिए ब्रिटिश सरकारने सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक समिति कायम की । यह समिति देश भर में भ्रमण करनेवाली थी । कांग्रेस ने माँग की कि इस समिति में कुछ भारतीय नेताओं को भी सदस्य के रूप में संमिलित कराया जाय । यह माँग ब्रिटिश सरकार ने नहीं स्वीकृत की । केवल अंग्रेज सदस्य ही इस समिति में रहे ।

इस लिए कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया कि साइमन कमिशन का बहिष्कार किया जाय । कमिशन जहाँ भी पहुँचा, वहाँ भारतीयों ने काले झण्डे दिखाये । साथ ही नारे लगाये—'साइमन, वापस चले जाओ ।'

साइमन कमिशन के विरोध में लाहोर में जो आंदोलन चला, उसका नेतृत्व लाला लाजपतराय ने किया। एक ब्रिटिश युवक अधिकारी ने लालाजी की छाती पर लाठी का प्रहार किया। लालाजी गहरी चोट खाकर धरती पर गिर पड़े।

लाला लाजपत भारतीय जनता के विशेष आदरणीय महान् नेता थे। उन पर जो अत्याचार हुआ उससे सारी जनता क्रोधित हो उठी। इस मार के कारण ही लालाजी की कुछ सप्ताहों के बाद मौत हुई। पं. जवाहरलालजी का भी यह विश्वास था कि घायल अवस्था में घबड़ाने के कारण ही लालाजी शीघ्र मृत्यु के शिकार हो गये।

ब्रिटिश सरकारने जुलूस निकालने पर प्रतिबंध लगा रखा था। इस आदेश का विरोध करनेके लिए पं. जवाहरलाल ने लखनऊ में एक जुलूस का आयोजन किया। इस अवसर पर दो बार उनकी पीठ पर लाठियाँ पड़ीं।

इसके दूसरे ही दिन साइमन कमिशन लखनऊ पहुँचा। जवाहरलालजीने उसके खिलाफ़ एक प्रचण्ड जुलूस निकाला। शांति के साथ विरोध प्रदर्शित करनेवाली जनता पर घुड़सवार पुलिस ने अंधाधुंद लाठियाँ चलाईं।

यहाँ भी पं. जवाहरलालजी ने लाठियों की मार सहन की। उनके मना करते रहने पर भी उनके मित्र उनको दूर उठा कर ले गये। ब्रिटिश पुलिस के अन्याय और अत्याचार बेहद बढ़ते जा रहे थे।

पंजाब के महान् नेता लाला लाजपतराय की मृत्यु तथा ब्रिटिश शासकों के क्रूर अत्याचारों ने भगत सिंह को अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़ने को प्रेरित किया। आखिर इसी आन्दोलन में उनको अपने प्राण त्यागने पड़े।

लालच का फल

भुवनेश्वर नाम का एक नगर था। वहाँ दो भाई रहा करते थे—सहदेव और महादेव। वे दोनों वैद्य का पेशा करते थे। सहदेव के पास जो मरीज़ आते, पहले वह उनका इलाज करता था। रुपये-पैसे की बात पहले नहीं उठाता था। मरीज़ अपनी हैसियत के मुताबिक जो कुछ देते, उसी में संतोष मानता। पर महादेव की बात उल्टी थी। वह रुपये के अनुपात में बीमारों का इलाज करता था।

इससे सहदेव की लोकप्रियता दिन-ब-दिन बढ़ती गई। साथ साथ उसकी आमदनी भी बढ़ती गई। पर महादेव के पास आनेवाले रोगियों की संख्या कम होती गई, और उसकी आमदनी भी कम होती रही।

अब महादेव की पत्नी ने पति को दुत्कारना शुरू किया—"तुम इस प्रकार मक्खियाँ मारते घर पर ही कब तक बैठे रहोगे? आमदनी का कोई और ज़रिया क्यों नहीं ढूँढ़ते? अगर कमा नहीं सकते तो किसी पेड़ पर फाँसी लगाकर मर जाओ।"

महादेव पत्नी की फटकारों से तंग आ गया और एक दिन घर से निकल पड़ा। वह कई गाँवों में भटकता रहा। पर एक कौड़ी न कमा सका। किसी नये कारोबार के बारे में उसने कई लोगों से सलाह-मशिवरा किया। हर व्यवसाय के लिए शुरू में कुछ पूँजी आवश्यक थी। आखिर विरक्त हो. जंगल में पहुँचा। वहाँ कुछ जंगली बेलों को पेड़ की डाल से बाँधकर फाँसी लगाने को हुआ।

उसी समय पासवाली एक गुफा से एक राक्षस आ निकला। महादेव को देख कर उसने पूछा—"अरे मानव, तुम यह क्या तमाशा करने जा रहे हो? कहीं आत्म-हत्या तो नहीं करना चाहते? खुदकुशी करना एक पाप है। किस मुसीबत में फँसे हो यह तो

अंजनीकुमार सिंह

गया है ।" राक्षस ने जंगली बेलों के फंदे को अपने कंठ में कस लिया और वह हवा में लटकने लगा ।

राक्षस का शरीर मोटा था, इस लिए पेड़ की डाल 'अर अर' आवाज़के साथ टूट कर नीचे आ गई और बड़ी ऊँचाई से राक्षस ज़मीन पर गिर पड़ा । उसके शरीर पर कई घाव हुए और बहुत कोशिश करने पर भी वह उठकर खड़ा न हो सका । पर उसने महादेव का धोखा देने का इरादा समझ लिया और पासवाले पत्थर उठाकर वह महादेव की तरफ़ फेंकने लगा ।

महादेव राक्षस को धोखा देने चला था, स्वयं ही मुसीबत मे फँस गया । पत्थरों की मार से बचने के लिए वह कँटीली झाड़ियों की तरफ बढ़ा और लुढ़कते हुए उनमें फँस गया । किसी तरह से बचते हुए घावों के साथ अपने घर पहुँचा ।

धन कमाने गये पति को यों सारे बदन में घावों के साथ लौटे देखकर पत्नी ने इसका कारण पूछा । महादेव ने अपना सारा किस्सा बीवी को सुनाया ।

महादेव की पत्नी ने प्रसन्नता के साथ कहा—"यह जो कुछ हुआ, सो हमारी भलाई के लिए ही हुआ है!"

महादेव ने अचरज विभोर हो पूछा—"तुम कहीं पागल तो नहीं हुई हो? जो हुआ उसमें हमारी भलाई भला क्या है?"

पत्नि ने समझाया—"मरीज़ तुम्हारे पास नहीं आते इसका कारण तुम्हारे बड़े भाई

बताओ । हो सकता है, मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूँ ।"

राक्षस की बातें सुनकर महादेव का डर कुछ कम हुआ । साथ ही उसके मन में एक लालच भी पैदा हुआ । कहते हैं कि राक्षसों के पास ख़ज़ाने गड़े होते हैं । महादेव ने सोचा कि राक्षस को किसी प्रकार दग़ा देखकर उसका धन हड़प लिया जाए!

जब राक्षस उसके पास आया तब महादेव ने कहा—"भाई, मैं कोई तमाशा नहीं कर रहा हूँ । इस प्रकार जंगली बेलों से कंठ कसकर हवा में लटकने से हमारे मरे हुए दादा-परदादा नज़र आते हैं । समझे?"

इस पर राक्षस को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने कहा—"ओह, तब तो तुम थोड़ा हट जाओ । मुझे अपने दादा को देखे ज़माना हो

साहब हैं! अब देखते रहो, मैं कैसे पिंड छुड़ा लूँगी!"

इसके बाद वह सहदेव के घर पहुँची और उसकी पत्नी से कहा—"दीदी, तुम्हारे देवर को जंगल में एक राक्षस ने दर्शन दिए और एक बोरे भर सोनेकी मुद्राएँ दी हैं। उनको कौन गिनते बैठे? तुम्हारे पास पाव-सेर हो तो दे दो, मुद्राएँ माप कर तुम्हारा पाव-सेर लौटा दूँगी।"

सहदेव की पत्नी को महादेव की पत्नी की बातों पर विश्वास नहीं हुआ। इस लिए उसने पाव-सेर के नीचे एक इमली चिपका दी।

महादेव की पत्नी पाव-सेर लेकर घर पहुँची, पाव-सेर के नीचे चिपकी इमली देख कर वह खुश हो गई। अपनी चाल कारगर होती दिखाई दी। उसने सोचा कि सोना प्राप्त करने के लोभ से सहदेव ज़रूर राक्षस के पास जाएगा और घायल राक्षस क्रोध में आकर उसे पकड़ कर मार डालेगा।

महादेव की पत्नी ने बहुत समय पूर्व एक सोने की अशर्फी अपने पास छिपा रखी थी। अपनी योजना को सफल बनाने के हेतु उसने वह अशर्फी पाव-सेर के नीचे इमली से चिपका दी और पाव-सेर सहदेव की पत्नी को वापस कर दिया।

पाव-सेर के नीचे चिपकी सोने की अशर्फी देख सहदेव की पत्नी ने अपने पति से कहा—"यह बात तो सत्य प्रतीत होती है कि तुम्हारे छोटे भाई को राक्षस ने स्वर्ण-मुद्राएँ दी हैं, तुम भी राक्षस के पास जाकर स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त कर सकते हो। लगता है

कि यह राक्षस बड़ा परोपकारी वृत्ति का है । उससे प्राप्त होनेवाली सोने की मुद्राओं से तुम गाँव में एक अस्पताल खोल कर लोगों की मुफ़्त में सेवा कर सकते हो ।"

सहदेव को अपनी पत्नी की सलाह पसंद आ गई । वह घर से निकल पड़ा । जंगल में थोड़ी दूर जाते ही एक स्थान पर उसे राक्षस दिखाई दिया । घायल राक्षस बुरी तरह कराह रहा था ।

उसके पास जाते हुए सहदेव ने समझाया–"मैं एक वैद्य हूँ । तुम्हें किसी प्रकार अपने प्राणों का भय नहीं होना चाहिए । मैं इलाज करके तुम्हारे घावों को ठीक कर दूँगा ।"

राक्षस ने सहदेव की ओर बड़ी दीनताभरी दृष्टि से देखा । सहदेव ने सहज ही जान लिया कि जंगल में क्या घटना घटित हुई होगी । उसकी देवरानी ने उसे हानि पहुँचाने के विचार से यह काल्पनिक कथा गढ़ी है कि राक्षस ने उसके पति को स्वर्ण-मुद्राएँ दी हैं ।

सहदेव ने एक सप्ताह भर जड़ी-बूटियों तथा पत्तों का रस निचोड़ कर राक्षस का खूब अच्छी तरह इलाज किया और उसको स्वस्थ बनाया । राक्षस ने सहदेव के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और अपनी गुफा में से एक बड़ी थैली भर सुवर्ण-मुद्राएँ लाकर उसे भेंट की ।

सहदेव गाँव में लौटा और उसने अपने भाई महादेव को बुलाकर समझाया–"अरे महादेव, कहावत है कि लालच का फल कड़ुआ होता है । जो कुछ हुआ सो हो गया । अब तुम चिंता मत करो ।" फिर उसने महादेव को राक्षस से प्राप्त स्वर्ण-मुद्राओं की कहानी सुनाई ।

फिर दोनों भाइयों ने गाँव में एक वैद्यशाला स्थापित की । संपन्न व्यक्तियों से उनकी हैसियत के मुताबिक इलाज का खर्च वसूलनेका रिवाज़ शुरू किया, गरीबों का इलाज मुफ़्त में करने लगे । इस प्रकार गाँव के लोगों के बीच दोनों ने अच्छा आदर और सुयश प्राप्त किया ।

बाणासुर बलि का पुत्र था। उसकी राजधानी थी शोणपुर नगरी। बाण के एक हज़ार हाथ थे, और वह बचपन से ही बड़ा ही उद्दण्ड और नटखट था। एक दिन उसने देखा, मणि-माणिक तथा सुवर्ण से आलोकित कुबेर पर्वत की एक गुफा में कुमारस्वामी (कार्तिकेय) क्रीडा में निमग्न है और शिव-पार्वती उस बाल-लीला को देख अपना मनोरंजन कर रहे हैं।

कुमारस्वामी के छे मुख, उसके हाथ, देह की आभा और चमक-दमक देख कर बाण अपने मन में सोचने लगा– "न जाने इस बालक ने किस प्रकार का तप करके शिवजी के पुत्र के रूप में जन्म धारण किया है, क्या मैं भी ऐसा तप करके इस प्रारब्ध को प्राप्त कर सकूँगा?" यों विचार करके बड़ी निष्ठा के साथ एकाग्रचित्त हो अनेक वर्षों तक शिवजी की आराधना की। उसकी तपस्या देख शिवजी परम प्रसन्न हुए और पार्वती को साथ लिये बाण के सामने उपस्थित हुए और हंसते हुए बोले– "वत्स, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। जो चाहो माँग लो, मैं अवश्य दूँगा।"

बाण ने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ कर निवेदन किया– "भगवन्, मुझे ऐसा वर प्रदान कीजिए, जिससे मैं इस देवी का पुत्र बनकर आपका अनुग्रह नित्य प्राप्त करता रहूँ।"

शिवजी ने बाण की बात मान ली और पार्वती से कहा– "देवी, यह बाण है, तुम्हारा छोटा पुत्र। कुमारस्वामी का यह अनुज है, इसे इस रूप में स्वीकार कर लो।" इसके

२४. बाणासुर की कथा

बाद शिवजी ने बाण को राजधानी के रूप में शोणपुर नगरी प्रदान की । शोणपुर में सब प्रकार की संपदाएँ विद्यमान थीं । शिवजी ने बाण से कहा– "मैं तुम्हारी राजधानी की रक्षा करता रहूँगा । तुम्हें कोई भी पराजित नहीं कर सकेगा । तुम निश्चिन्त रहो ।"

कुमारस्वामी ने बाण को एक अद्‌भुत मोर प्रदान किया और कहा– "यही मोर तुम्हारा वाहन और पताका बना रहेगा ।"

अब बाण के लिए किसी का भय न रहा, क्योंकि शिवजी स्वयं उनके रक्षक थे । इस लिए बाण ने अपने राज्य का विस्तार करने के हेतु देवता, गंधर्व, नाग, खेचर, राक्षस इत्यादि को क्रमशः जीत लिया । फिर भी उसकी विजीगीषा पूरी नहीं हुई । वह व्याकुल होने लगा कि उसके साथ युद्ध करनेकी क्षमता रखनेवाला कोई नहीं रहा ।

यों कई वर्ष बीत गये । उसके हाथ की खुजली बढ़ती गई, उसके मन की युद्ध की लालसा दिन-ब-दिन तीव्र होती गई । वह शिवजी के पास गया, उनको साष्टांग प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करके निवेदन किया– "भगवान्, अब मेरे साथ युद्ध करनेवाला कोई न रहा । मुझ पर अनुग्रह कीजिए और मुझे युद्ध का अवसर प्रदान कीजिए ।"

बाण की ये बातें सुनकर शिवजी हंस पड़े । उन्होंने कहा– "सुनो, तुम जो वर माँग रहे हो, उसे अस्वीकृत करना उचित नहीं लगता । जब तुम्हारा मयूर-ध्वज बिना किसी कारण से झुक जाएगा, तब समझ लो कि तुम्हारी इच्छानुसार युद्ध का अवसर करीब है । उसी समय तुम्हें अपने अनुरूप शत्रु के साथ युद्ध करना पड़ेगा । चिन्ता न करो ।"

बड़े संतोष के साथ बाण ने शिवजी को प्रणाम किया और फिर शिवजी से विदा लेकर अपने महल पहुँचा । अपने मयूरध्वज के समीप बैठकर बाण ने सभा बुलाई और अपने मंत्री कुंभांड से कहा– "देखो, मैं एक शुभ समाचार ले आया हूँ ।"

इस पर कुंभांड ने कहा– "शुभ समाचार तो अनेक प्रकार के होते हैं । यह कैसा समाचार है भला ? क्या शिवजी ने आपको कोई नया वर प्रदान किया है ? अथवा देवेन्द्र

इन्द्र को पाताल में भेजकर देव-लोक में शासन करने का वरदान मिला है ? या श्रीकृष्ण को पराजित करने का कोई उपाय तो नहीं बताया ? यदि ऐसा हुआ हो तो फिर हमको किस बात की कमी है ? विष्णु के द्वारा धोखा खाकर पाताल में पहुँचनेवाले तुम्हारे परम धर्मात्मा पिता को विमुक्ति प्राप्त होगी । उनके पुनः दर्शन करके हम धन्य हो जाएँगे ।''

मुस्कुराते हुए बाण ने कहा– ''नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है कुंभांड ! युद्ध के अभाव में मेरी भुजाएँ फड़क रही थीं, इस पर मैंने शिवजी से अनुरोध किया कि मेरे इस मयूर-ध्वज के कारण चाहे जब मुझे युद्ध प्राप्त हो सकता है । यही समाचार मैं तुम्हें बताना चाहता था ।''

इस पर कुंभांड का चेहरा एकदम पीला पड़ गया । उसने कहा– ''उफ्, यह कैसा प्रारब्ध है ? शिवजी से आप ने यही वर माँगा है ? प्रह्लाद के वंश का कैसा बुरा हाल हो गया है ?''

कुंभांड के मुँह से बस ये बातें निकल ही रही थीं कि मयूर-ध्वज भारी आवाज़ के साथ देखते देखते नीचे गिर पड़ा । जैसे वज्रायुध ने पहाड़ पर प्रहार किया हो । अपनी इच्छा की पूर्ति होते देख बाण को अत्यन्त आनन्द हुआ । उसी क्षण पृथ्वी काँप उठी, आकाश में एक नया तारा उदित हुआ, प्रचण्ड वेग से आँधी का प्रकोप हुआ । शोणपुर पर रक्त की वर्षा हुई और इसी प्रकार अनेक उत्पात मचे ।

इस सब कांड को देख कुंभांड घबरा गया और मन-ही-मन सोचने लगा– ''बाण ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करके यह सिद्ध
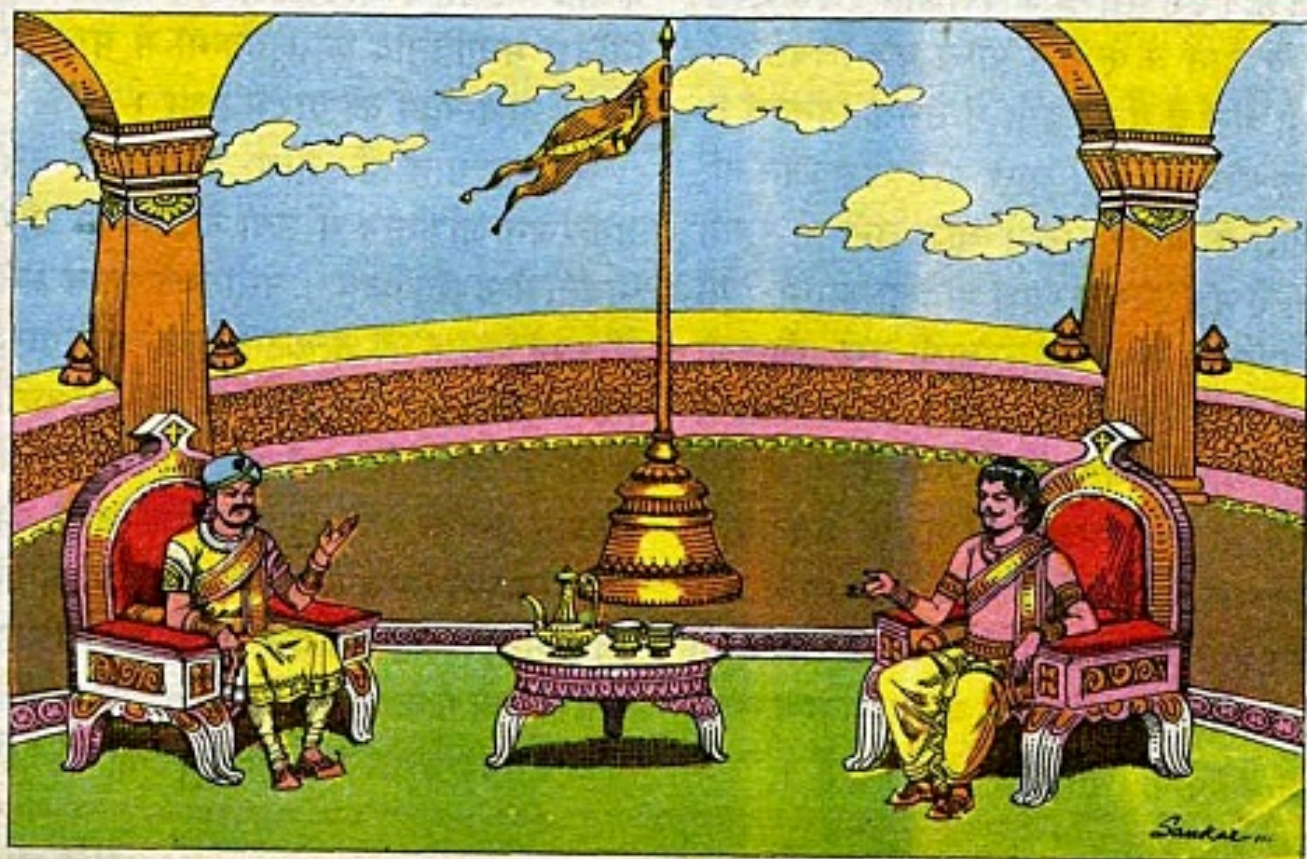
किया कि उसका सामना कर सकनेवाला कोई नहीं है । इस घमण्ड के वश होकर उसने युद्ध को वरदान के रूप में प्राप्त कर लिया है । कैसी भूल है यह ! इसी में उसके विनाश के बीज बोये हुए हैं । बाण भले ही सज्जन हो, राक्षस के भीतर राक्षस-बुद्धि बनी ही रहती है । ये सब उत्पात व्यर्थ थोड़े ही जाएँगे ? यों तो शिवजी तथा कुमारस्वामी नगर की रक्षा कर रहे हैं । फिर भी वरदान के रूप में प्राप्त हुआ युद्ध अनिवार्य हो गया है । लेकिन देवताओं की पराजय को न सह सकनेवाले और बाण को हरानेवाले विष्णु के सिवा और कौन है ? पर यहाँ तो बाण सारे सुखोपभोगों में तल्लीन हो बड़े हौसले के साथ विष्णु से भी युद्ध करने के लिये तैयार बैठे हुए हैं ।"

बाण के एक उषा नाम की पुत्री थी । वह परम सुन्दरी थी, मानो चन्द्रमा की सोलह कलाएँ नारी-रूप धारण कर चुकी हों । उषा की एक सखी थी चित्ररेखा जो कुंभांड की पुत्री थी । उषा अपने पिता के आदेश से सुयोग्य पति की कामना से पार्वती देवी की उपासना करती रही ।

इतने में चैत्र मास आया । शिवजी शोणनगर में थे, उन्होंने पार्वती के साथ वसंत-विहार का आयोजन किया । कई गंधर्व स्त्रियों तथा अप्सराओं को निमंत्रण दिया गया । उन्होंने सभी नारियों को पार्वती का रूप धारण करने का आदेश दिया । सभी युवकों को शिव का रूप धारण करने की सलाह दी । इसके बाद सब लोग मिलकर शोणपुर से सटकर बहनेवाली मंदाकिनी नदी के तट पर पहुँचे और निकटवर्ती उद्यानों में विविध मनोविनोद के कार्यक्रमों में मग्न हो गये । नृत्य-गान का प्रारंभ हुआ ।

बड़े उत्साह के साथ चलनेवाले इस मनोरंजन अभियान में उषा ने शिवजी और पार्वती के दर्शन किये । उसी क्षण उसके मन में अपने विवाह की उत्कट अभिलाषा निर्माण हुई । वास्तव में उषा को किसी बात की कमी न थी । उसके पिता त्रैलोक्य-विजेता हैं । साक्षात् पार्वती देवी की आराधना करने का सौभाग्य उसे प्राप्त है । वह प्रति दिन अपने लिए सुयोग्य पति प्रदान करने की प्रार्थना पार्वती देवी से करती आ रही है । लेकिन अब तक उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो पा रही

है ।

पार्वती देवी ने उषा के मन की इन विचार-तरंगों को अच्छी तरह जान लिया और संकेत करके उसको अपने पास बुला लिया । पार्वती ने उषा से कहा– "हे बाले, तुम्हारे मन की बात मैंने जान ली । युवतियों को पति की प्राप्ति के लिए व्याकुल होना उचित और स्वाभाविक ही है । शीघ्र ही तुम्हें अपने अनुरूप वर की प्राप्ति होगी ।"

"यह कैसे संभव है, देवीजी ?" उषा ने पूछा ।

"सुनाती हूँ, सुनो । आगामी वैशाख शुक्ला द्वादशी की रात में तुम्हें सपने में एक पुरुष के दर्शन होंगे । वही तुम्हारा भावी पति होगा ।" पार्वती ने आश्वासन दिया ।

उषा को बड़ी प्रसन्नता के साथ लज्जा भी हुई । उसने पार्वती को भक्ति-भाव से प्रणाम किया और वहाँ से चल निकली ।

पार्वती का कथन असत्य कैसे हो सकता है ? द्वादशी की रात को उषा अपनी सखियों के साथ महल में निद्रानंद का अनुभव कर रही थी । उसने एक सपना देखा । सपने में कामदेव से एक सुंदर युवक ने उसको दर्शन देकर पुकारा और उसका हाथ अपने हाथ में थाम लिया ।

उषा चौंक कर नींद से जाग उठी । उसने आँख खोली तो सामने कोई न था । पर जो कुछ हुआ, वह स्वप्नवत् नहीं लगा । ऐसा लगा जैसे कोई घटना घटित हुई हो । उसके मन में एक साथ भय तथा लज्जा ने घर कर लिया । वह पार्वती देवी का कथन पूर्ण रूप से भूल गई थी । इस लिए उसने सोचा कि अपने सपने द्वारा उसे तथा उसके पिता के वंश को विशेष अपयश प्राप्त हो गया है । इसी चिंता में व्याकुल हो वह ज़ोर से रो पड़ी ।

सारी सखियों की नींद टूटी और सब ने उसे घेर लिया । चित्ररेखा उसके पीछे खड़ी हुई और उसका सिर अपने वक्ष से टीका कर सहलाती हुई बोली– "सखी, डरो मत ! आखिर क्यों रो रही हो ? तुम्हारे मन को व्याकुल बनाने का दु:साहस करनेवाला कौन है? तुम्हारे पिता बाण तो अजेय हैं ।" यों समझाते हुए चित्ररेखा ने उषा के आँसू पोंछ डाले ।

उषा ने अपने सपने का सारा वृत्त सुनाते

हुए कहा– "मैंने जो कुछ भी देखा वह कदापि सपना नहीं हो सकता । यह मेरे चरित्र पर लगा महा कलंक है ।"

इस पर चित्ररेखा ने उषा को पार्वती के कथन की याद दिलाई । और समझाया– "आज वैशाख शुक्ला द्वादशी है । देवी पार्वती ने स्वयं तुम्हें बताया था न कि आज रात के सपने में जो युवक तुम्हें दर्शन देगा, वही तुम्हारा भावी पति होगा ! इस समय तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए, अजीब बात है कि तुम चिन्ता कर रही हो !"

दूसरे ही क्षण उषा का मुख-कमल यों उल्लसित हुआ मानो बादलों के हट जाने से चन्द्रमा शोभायमान हुआ हो । तब उसने कहा– "अरी चित्ररेखा, तुमने मेरी सारी चिन्ता दूर कर दी । मेरे प्रारब्ध को सफल करने का उपाय भी तुम्हीं को करना होगा । वैसे मैं उसके स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकती । पर उनका रूप मेरी आँखों के सामने प्रत्यक्ष है । उनको ढूँढ़ निकालना तुम्हारा काम है । मेरा सौभाग्य अब तुम्हारे हाथों में है ।"

चित्ररेखा ने कहा– "सखी, मैं अवश्य तुम्हारी भरसक मदद करूँगी । तुम्हारा सुख ही मेरा सुख है । उस युवक को ले आना कोई बड़ी समस्या नहीं है । पर पहले हमें इस बात का तो पता चले कि दरअसल वह है कौन ? मैं इसी बात का विचार करती हूँ कि उसका पता कैसे लगाया जाए ? तुम तो कहती हो कि तुम उसका वर्णन नहीं कर सकती, और मैंने तो उसे देखा नहीं ! अब ?" चित्ररेखा ने अपनी समस्या रखी ।

उषा ने आँखों में आँसू भरकर कहा– "अपने काम स्वयं करना ही अच्छा होता है । दूसरों का काम करना कठिन ही होता है । सखी चित्ररेखा, तुम तो मुझे प्राणों के समान हो । सच कहती हूँ, अगर तुम मुझ पर दया न दिखाओगी तो मैं मर जाऊँगी ।"

"सखी, तुम चिन्ता मत करो । बस मुझे थोड़ा समय दो । मैं तुम्हारे प्रियतम को किसी प्रकार से ले ही आऊँगी । जब लोकेश्वरी पार्वती देवी की कृपा तुम पर है तो तुम्हारी कामना-पूर्ति होने में संदेह ही क्या है ?" चित्ररेखा ने सान्त्वना दी ।

इसके बाद चित्ररेखा ने अन्य सखियों को

समझाया– "तुम लोग उषा की देखभाल करती रहो । मुझे एक विशेष काम में दत्तचित्त होना है । उषा ने सपने में जिस युवक को देखा उसे मुझे ढूँढ़ निकालना है! अब कहाँ जाकर ढूँढूँ उसको? मेरे मन में एक कल्पना है । देखूँ उसे कार्यान्वित करके कहाँ तक सफलता मिलती है ।"

अब चित्ररेखा एकांत में जा बैठी । उसने सोचा–'क्यों न विश्व भर के प्रमुख युवकों के चित्र अंकित कर दूँ? देव, दानव और मानवों में जो सुंदर और चरित्र संपन्न युवक हैं उनके हूबहू चित्र बना लूँ और सब के साथ उषा के पास जाकर एक एक उसके सामने पेश करूँ! उसके सपने में आये युवक का चित्र उसने पहचान लिया कि हो गया मेरा काम ।' यों सोचकर उसने एक तूलिका और विभिन्न रंग लेकर एक सप्ताह भर में चित्र अंकित किये । इन चित्रों में चित्ररेखा ने उन युवकों द्वारा धारण किये वस्त्रों व आभूषणों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया । फिर इन सभी चित्र को वह उषा के पास ले आई और बोली–"सखी, विश्व भर के सारे प्रमुख युवकों के ये चित्र मैंने बड़े परिश्रमपूर्वक बनाये हैं । इन चित्रों को देख कर तुम बता दो कि तुम ने सपने में किस को देखा? इन चित्रों में प्रायः सभी देव, दानव और मानव हैं ।"

उषा एक एक चित्र को देखती गई । जब उसकी दृष्टि यादव-प्रमुख श्रीकृष्ण पर पड़ी, तो वह आश्चर्यचकित हो गई । इसके बाद प्रद्युम्न का चित्र देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा । क्योंकि इन दोनों चित्रों में अनिरुद्ध की रूपरेखा उसे दिखाई दीं । इसके बाद उषा ने अनिरुद्ध का चित्र अपने हाथों में लिया और अपने आपको भूल गई । उसे अपना सब सपना याद आया । जिसने उसका हाथ अपने हाथ में लिया था, उस युवक की स्मृति तरोताजा हो गई । वह उस चित्र की तरफ़ बस देखती ही रह गई । उस चित्र को देखने के बाद उषा ने उसे अलग नहीं रखा । चित्ररेखा ने जान लिया कि उषा को सपने में दर्शन देनेवाला पुरुष और कोई नहीं, अनिरुद्ध ही है ।

गुप्त वसीयतनामा

पाँच-छः सौ वर्ष पहले की बात है । चीन के एक राज्य का राज-प्रतिनिधि था "नीषा-चियेन" । उसने अपार धन कमाया, कई मकान खरीदे और खूब ज़मीन का वह मालिक बना । उसके एक इकलौता पुत्र था "षान-ची"। उसकी शादी होने के बाद थोड़े ही दिनों में उसकी माँ मर गई । नी-चियेन की अब उम्र हो गई थी । सारे काम सम्हालने में उसे तकलीफ होती थी । कभी कभी शारीरिक अस्वास्थ्य भी उसे सताता था। इस लिए राज-प्रतिनिधि "नी" ने अपने पद का त्याग-पत्र दे दिया। और वह ज़मीन-जायदाद की देख-रेख करने लगा । खेती-बाड़ी के काम में उसे खूब रस आने लगा । व्यायाम होता और दिल भी बहलता । खेतों में ही उसने अपने लिए एक छोटा-सा घर बना लिया ।

एक दिन षान-ची ने अपने पिता से कहा—"बाबूजी, अब तो आप बूढ़े हो चुके हैं, निश्चिन्त होकर आराम कीजिए । सारी ज़िम्मेदारियाँ मुझे सौंप दीजिए । मैं सब कुछ सम्हाल लूँगा ।"

"मेरी जान में जान रहते मैं क्यों अपने व्यवहार किसी और को सौंप दूँ?" और फिर तुम्हारे पीछे तुम्हारे काम भी तो हैं । मैं काम के बिना कैसे रह सकता हूँ? मेरे लिए काम ही आराम है । वरना मैं पागल बन जाऊँगा ।" नी ने कहा । पर इतने से उसे संतोष नहीं हुआ । नी ने एक अैसा और काम भी किया जो पुत्र के लिए असहनीय था ।

एक दिन नी अपने गाँव के बाहर टहल रहा था । तालाब के घाट पर एक सोलह साल की कन्या कपड़े धो रही थी । उसके साथ उसकी नानी भी थी। लड़की का नाम था—"मेय" । उसके माँ-बाप बचपन में ही

एक चीनी लोककथा

मर गये थे । इसलिए उसकी नानी ने उसे पाल-पोसकर बड़ा बनाया था । वह बहुत ग़रीब थी, इस लिए मेय की शादी के बारे में अभी तक कुछ सोचा नहीं था ।

मेय को देखते ही नी उस पर मोहित हो गया । उसके मन में विचार आया कि इस ग़रीब युवती कन्या से विवाह कर लें तो उसकी दरिद्रता दूर हो जाएगी । अपना भी अकेलापन जाता रहेगा! उसने लड़की की नानी को समझाया–"अगर तुम मेय की शादी मेरे साथ कर दो, तो मैं तुम्हें जीवन भर आराम से रखूँगा । मेय भी एक बड़े घर की मालकिन बनकर रहेगी ।" नी की बातें सुन कर बुढ़िया खुश हो गई । मेय ने भी वृद्ध नी के साथ शादी करना स्वीकार किया । मेय वृद्ध की पत्नी बनकर घर में आ गई । थोड़े ही दिनों में नी समझ गया कि मेय उम्र में छोटी भले ही हो, उसका स्वभाव बहुत अच्छा है ।

बुढ़ापे में नी का शादी करना उसके पुत्र षान-ची और उसकी बीवी को बिलकुल पसंद नहीं आया । उन दोनों ने विचार किया कि मेय बड़ी चतुर है और उसने वृद्ध नी को अपने जाले में फँसा लिया है । इस कारण 'नी' के वंश की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल रही है ।

शीघ्र ही मेय गर्भवती बन गई और यथाकाल उसने एक पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम रखा गया–"षान-षू" । अपने भाई पैदा होने के कारण षान-ची को खुशी नहीं हुई, उल्टे उसने अपनी सौतेली माँ के प्रति अफवाहें फैलाना शुरू किया ।

षान-ची जो अफवाहें फैलाता, वे सब उसके पिता के कानों में पड़ जाती थीं, पर उनके संबंध में प्रकट रूप से उसने कुछ कहा नहीं । चुपचाप सब कुछ सह लेता । उसने समझ लिया कि षान-ची उसके बारे में इस लिए अफवाहें फैलाता है कि उसकी जायदाद में उसका सौतेला भाई कभी-न-कभी हिस्सेदार बनेगा ही ।

जब षान-षू पाँच साल का हो गया तब नी ने उसको एक शिक्षक के यहाँ पढ़ने के लिए भेजा । उसी शिक्षक के पास षान-ची का पुत्र भी अध्ययन कर रहा था । षान-ची ने सोचा कि उसका लड़का षान-षू के साथ एक ही शिक्षक के पास पढ़ेगा तो दोनों के बीच मित्रता स्थापित हो सकती है । इस लिए

षान-ची ने अपने पुत्र को किसी और शिक्षक के पास पढ़ने के लिए भेजा । यह देख नी झल्ला उठा और उसने अपने पुत्र को डाँटना चाहा । पर यह सोच कर वह चुप रह गया कि दुष्ट के मुँह लगने से कोई फ़ायदा नहीं होगा ।

इस घटना के कुछ दिनों बाद नी लकवे का शिकार हो गया । वैद्य ने उसकी जाँच करके बताया – ''इस बीमारी के लिए कोई दवा नहीं है, इसी प्रकार कुछ दिन खाट पर पड़े रहकर अंतिम साँस लेनी है!''

एक दिन षान-ची अपने पिता को देखने आया । वह समझ गया कि अब पिताजी का पूर्ववत् चलना-फिरना असंभव है । इस लिए उसने सर्वत्र अपना रोब जमाना शुरू किया । वह बात-बात पर नौकरों को मारने-पीटने लगा, जैसे कि वही उन सब का मालिक है । मेय और षान-षू बूढ़े की खाट के पास बैठकर व्याकुल होने लगे ।

नी ने समझ लिया कि अब उसका अंतिम समय निकट है । उसने एक दिन अपने ज्येष्ठ पुत्र षान-ची को बुलाया और उसके हाथ में एक पुस्तक सौंप दी । उस पुस्तक में नी की ज़मीन-जायदाद संबंधी सभी विवरण थे ।

उसने अपने बड़े पुत्र से कहा – ''सुनो बेटे, षान-षू केवल पाँच साल का लड़का है । कुछ साल तक उसको किसी की देखरेख में रहना होगा । उसकी माँ हमारी सारी ज़मीन जायदाद संभालने की योग्यता नहीं रखती । इस लिए मैं अभी उनको जायदाद का हिस्सा नहीं दे रहा हूँ । सारी संपत्ति तुम्हारे हाथ सौंप रहा हूँ ।

षान-षू जब बालिग होगा, तब उसकी

शादी करा दो । उसको एक छोटा-सा मकान और दस एकड़ ज़मीन दे दो । अन्यथा उसको रहने व खाने-पीने की मुसीबत होगी । ये सारी बातें मैंने इस किताब में लिख रखी हैं । जब बँटवारे का समय आएगा, तब यही किताब उसका आधार बन जाएगी । अगर मेरी दूसरी पत्नी पुनर्विवाह करना चाहे तो करने दो । अगर विधवा बन कर वह अपने पुत्र के साथ ही रहना चाहे, तो तुम उस पर दबाव मत डालना । मेरी मृत्यु के बाद मेरी इच्छाओं का पालन करोगे तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी ।"

षान-ची ने प्रसन्नतापूर्वक पिता से प्राप्त पुस्तक ले ली और चलते चलते कहा—"पिताजी, आप बिलकुल चिंता न कीजिए । आपके सभी आदेशों का मैं पूरा पालन करूँगा ।"

षान-ची के चले जानेके बाद मेय ने आँखों में आँसू भरकर अपने पति से कहा—"आखिर यह भी तो आपका पुत्र ही है न? आपने अपनी सारी संपत्ति ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर हमारे प्रति अन्याय क्यों किया? हम अपने दिन कैसे गुज़ारेंगे?"

पति ने समझाते हुए मेय से कहा—"तुम नहीं जानती । षान-ची पर विश्वास नहीं किया जा सकता । अगर मैं इस समय दोनों पुत्रों में अपनी संपत्ति समान रूप से बाँट दूँ, तो बड़ा लड़का संपत्ति के लालच में पड़कर छोटे की जान ले सकता है । सारी संपत्ति उसके हाथ सोंप दूँ तो वह अपने छोटे भाई से ईर्ष्या नहीं करेगा । तुम भी विशेष अनुभव नहीं रखती हो, इस लिए मैंने छोटे के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी षान-ची को सौंपी है । मेरी मृत्यु के उपरान्त तुम यहीं रहकर यातनाएँ मत भोगना । योग्य पति का चुनाव कर उसके साथ शादी कर लो और जीवन भर सुखी रहो ।"

"मैं भी एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्म ले चुकी हूँ । मैं पुनर्विवाह करके अपने पुत्र से दूर कैसे जा सकती हूँ? चाहे सुख प्राप्त हो या दुख, मैं अपने पुत्र के साथ ही रहूँगी ।" मेय ने अपना दृढ़ निश्चय सुनाया ।

नी ने समझ लिया कि मेय अपना विचार बदलनेवाली नहीं है, तो अपनी पत्नी से कहा—"तो सुन लो, मैं ऐसा प्रबंध कर देता हूँ

कि तुम्हें और तुम्हारे पुत्र को ज़रा भी कष्ट न पहुँचेगा ।" ऐसा कहते हुए नी ने अपने तकिये के नीचे से एक बण्डल निकाल कर मेय के हाथ सौंप दिया ।

मेय ने पूछा—"यह क्या है?"

नी ने समझाया—"यह मेरा चित्र है! इसमें एक रहस्य है । किसी को दिखाये बिना तुम इसे अपने पास रख लो । जब तुम्हारा पुत्र बड़ा होगा और षान-ची उसकी मदद करने से इन्कार करेगा, तब इस राज्य के किसी बुध्दिमान् तथा धर्मात्मा न्यायाधिकारी के पास जाकर उनको यह चित्र दिखाकर अपनी फरियाद पेश करना । इस चित्र को सावधानी से देखने पर वे ऐसा फैसला सुनाएँगे कि तुम अपने पुत्र के साथ सारा जीवन सुखपूर्वक बिता सकोगी ।"

इस घटना के कुछ दिन उपरान्त नी का देहान्त हो गया ।

अपने पिता के मरते ही षान-ची ने सारी चावियाँ अपने कब्ज़े में कर लीं । पिताजी की अंत्येष्ठि समाप्त होते ही मरम्मत के बहाने षान-ची ने अपनी सौतेली माँ और सौतेले भाई को उनके कमरों से हटाया । मकान के पिछवाड़े तीन कमरोंवाली एक कुटिया थी, वहाँ उनके रहने का प्रबंध किया । उनकी सेवा के लिए केवल एक छोटी लड़की को रखा । वह हर रोज़ माँ और बेटे के लिए थोड़े चावल भेज देता, साग-सब्जी भेजनेकी ज़रूरत नहीं समझता । साग-सब्जी तथा घर के अन्य आवश्यक खर्च के लिए मेय सिलाई का काम करके थोड़ा-बहुत कमा लेती ।

थोड़े दिन बाद षान-ची ने अपने एक सेवक को सौतेली माँ के पास भेजा और समझाने की कोशिश की कि वह पुनर्विवाह करे । रिश्ते बनानेवाले कुछ लोगों को भी उसके पास भेजा । मेय ने सब को स्पष्ट रूप से कह दिया कि वह पुनर्विवाह नहीं करना चाहती । इसके बाद षान-ची ने अपनी सौतेली माँ और भाई की खबर लेना बिलकुल छोड़ दिया । जो थोड़ी मदद वह कभी कभी करता उसे भी उसने बन्द कर दिया ।

(अगले अंक में समाप्त)

तीन चीज़ें

सोमेन्द्र नाम का पंडित एक नदी के किनारे स्थित उपवन में अपना गुरुकुल चलाता था । गुरुकुल में बहुत अच्छा प्राकृतिक वातावरण था । निवास का बंहुत अच्छा प्रबंध था । इसलिए इस गुरुकुल में सीखने के लिए छात्र हमेशा लालायित रहते थे । गुरुकुल में अनेक विद्यार्थी थे । उनमें राधारमण नाम का एक विद्यार्थी था, जिस से सोमेन्द्र को विशेष प्यार था । सच्चरित्र राधारमण धारणाशक्ति और बुद्धिमत्ता में भी बेजोड़ था । वह बड़ा मिलनसार था और हर किसी से मधुर वचन बोलना । एक बार कुछ सुन लेता, तो वह बात उसके दिमाग पर नक्श हो जाती । अतः सब लोग इसे चाहते थे ।

राधारमण कभी अपने सहपाठियों के साथ व्यर्थ वाद-विवाद नहीं करता था । गुरु के उपदेशों को वह ध्यान से सुन लेता और शाम को नदी तट पर एकान्त में पुस्तकपठन में अपना समय व्यतीत करता था ।

गुरु सोमेन्द्र के राधारमण को विशेष प्यार जताने के कारण रामभद्र तथा कृष्ण दीक्षित नामक विद्यार्थी राधारमण से ईर्ष्या करने लगे । वैसे वे दोनों भी अच्छे विद्यार्थी थे । पढ़ने में तेज़ और मिजाज़ के अच्छे,फिर भी राधारमण के प्रति गुरु का विशेष प्रेम उनसे सहा नहीं जाता था । वे समझते थे राधारमण से अत्यधिक प्रेम के कारण गुरु औरों के प्रति अन्याय करते हैं ।

एक दिन जब सोमेन्द्र विद्यार्थियों को पाठ पढ़ाने के बाद एक पेड़ तले विश्राम कर रहा था, तब ये दोनों लड़के आचार्य के पास पहुँचे और शिकायत करने लगे, ''गुरुदेव, हम सब जानते हैं कि हम सब में सदाचरण व ज़्यादा बुद्धिमत्ता रखनेवालों के प्रति आप का विशेष वात्सल्य रहता है, लेकिन यह राधारमण के

मीना राव

प्रति आपका जो विशेष प्यार है, उस पर हमें आश्चर्य होता है! राधारमण के समान हम सभी आपके आज्ञाकारी शिष्य हैं। जिन ग्रंथों का वह अध्ययन करता है, उन्हीं को हम भी पढ़ते हैं। ज्ञान-लालसा में हम भी कुछ कम नहीं हैं।"

इसपर हँसते हुए सोमेन्द्र बोला, "गुरुकुल के सभी विद्यार्थी मेरे प्रेम-पात्र हैं। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है कि वेद, शास्त्र तथा इतिहास सम्बन्धी विषयों में वह सब से अधिक प्रज्ञावान है। इसके अतिरिक्त लौकिकज्ञान व तार्किक दृष्टि में भी बाक़ी विद्यार्थियों से कहीं आगे है।"

"क्षमा कीजिये गुरुदेव, आप के इस कथन का प्रमाण क्या है?" रामभद्र तथा कृष्ण दीक्षित ने एक स्वर में पूछा।

"तब तो सुन लो, तुम सब को मैं अभी एक कहानी सुनाऊँगा। उस कहानी में निहित समस्या का सही हल जो बताएगा, वही तुम सब विद्यार्थियों में अधिक मेधावान् माना जाएगा। अब तुम दोनों जाकर अपने सारे सहपाठियों को एक स्थान पर इकठ्ठा करो। मैं आकर कहानी सुनाऊँगा।" सोमेन्द्र ने कहा।

सब विद्यार्थी एक पेड़ के नीचे इकठ्ठा हुए और सोमेन्द्र ने कहानी सुनाई:–

पूर्णचन्द्र छोटी अवस्था में ही सूर्यनगर का राजा बन गया। उसके परिवार में उसकी माँ, उपवर बहन और पत्नी थी। इन तीनों को वह तहे दिल से प्यार करता था।

एक दिन एक योगी ने राजमहल में प्रवेश करके एक गोली, एक हार और एक फूल

राजा पूर्णचन्द्र के हाथ सौंपा और उन वस्तुओं के गुण उसे बताये, "राजन्, इन वस्तुओं को आप उन व्यक्तियों को दीजिये जो आप से प्यार करते हैं । सुनिये, इस गोली को जो निगलेगा उसे ज़िंदगी भर किसी बात की चिन्ता नहीं रहेगी, वह सदा कुशल व सुखी रहेगा । यह हार जो पहनेगा उसके द्वारा सदा आप का हित होगा; और यह पुष्प जो अपने सिर में धारण करेगा उसका सौन्दर्य दुगुना निखर उठेगा ।" इतना कहकर योगी राजा को आशिर्वाद देकर चला गया ।

वैसे पूर्णचन्द्र के प्रेम पात्र व्यक्ति तीन ही हैं और योगी ने वस्तुएँ भी तीन ही दे दीं हैं । उनमें से एक भी वस्तु, उसके अपने लिये नहीं है । राजा यह तो जानता नहीं कि कौन वस्तु किसे दी जाय?"

सोमेन्द्र ने यह कहानी सुनाकर विद्यार्थियों से पूछा, "तुम लोगों ने सुन ही लिया है कि राजा के समक्ष कौनसी समस्या उपस्थित है । अब तुम्हीं लोग उस का सही हल बता दो ।"

रामभद्र व कृष्ण दीक्षित के साथ वहाँ उपस्थित अन्य विद्यार्थियों में से कोई भी ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे पाया ।

उस हालत में राधारमण ने खड़े होकर कहा, "राजमाता विधवा है; यदि वह चिन्तामुक्त होकर सुखी रहे, तो यह राजा के लिये संतोषजनक होगा । इसलिये गोली राजमाता को दी जानी चाहिये । पत्नी द्वारा अगर राजा का हित हो सकता है, तो उसका दाम्पत्यजीवन आनन्ददायक होगा; इसलिये राजा को चाहिये कि हार वह अपनी पत्नी को दे दे । योगी द्वारा प्राप्त फूल धारण करने से सौन्दर्य दुगुना होता है; इसलिये वह फूल वह अपनी युक्तवयस्का बहन को दे जिससे उसका विवाह किसी अच्छे से वर के साथ हो सकेगा ।"

राधारमण का सुझाया यह हल सोमेन्द्र के साथ अन्य विद्यार्थियों को भी सही प्रतीत हुआ । सब ने प्रसन्नतापूर्वक हर्षनाद किये ।

अब राधारमण से ईर्ष्या करनेवाले रामभद्र व कृष्ण दीक्षित भी खुश हुए और दोनों ने हृदयपूर्वक उसका अभिनन्दन किया ।

चिदम्बर का रहस्य

किसी गाँव में चिदम्बर नाम का एक अमीर आदमी रहता था। वह अव्वल दर्जे का कंजूस था। लेकिन उसकी पत्नी दान-धर्म करने में बड़ी श्रद्धा रखती थी।

एक बार एक पर्व के संदर्भ में उस गाँव के सभी निवासियों ने मिलकर चन्दा वसूल किया और एक कथावाचक के पुराण-पाठ का प्रबंध किया। चिदम्बर ने अपनी ओर से एक कौड़ी भी नहीं दी और उल्टे कहा, "मैं इन पुराण-पाठों पर बिलकुल विश्वास नहीं रखता।"

उस दिन से इस मामले को लेकर पति-पत्नी में अक्सर झगड़ा होने लगा।

"आप ने चन्दा नहीं दिया, तो कोई बात नहीं; मगर मुक्ति का मार्ग जानने के लिये ही सही, तीन बातें सुन आते, तो आप का क्या बिगड़ जाता?" पत्नी ने ज़ोर डाला।

पत्नी के अनुरोध से तंग आकर चिदम्बर ने उसकी बात मान ली और केवल तीन बातें ही सुनने के लिये अपनी स्वीकृति दी।

उस रात को पुराण-पाठ का प्रबन्ध एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे किया गया था। सुनने आये लोगों से सारी जगह खचाखच भरी हुई थी। चिदम्बर भी वहाँ जाकर एक कोने में बैठ गया। गाँव के मुखिये ने सभा को संबोधित कर पूछा, "क्या सभी प्रमुख लोग आ गये हैं; या और कोई आनेवाला है?"

"ओह! कथा-वाचक का शायद यही पहला वाक्य है। जो तीन बातें सुननी थीं उनमें से एक बात तो सुन चुका।" चिदम्बर ने अपने मन में सोचा।

इतनें में बैठने की जगह न पाकर कुछ लोग, बैठे हुए लोगों के सामने खड़े हो उनके

कथा-वाचक को देखने में अवरोध बन गये । मुखिये ने पुनः उठकर उन्हें चेतावनी दी ।–"आप लोग बैठ जाइये; बैठ जाइये ।"

चिदम्बर ने सोचा कि यही दूसरी बात है ।

लोग अधिक संख्या में आ गये थे, इसलिये जगह न पाकर कुछ लोग वापस जाने लगे । उनको उद्देश्य कर मुखिये ने कहा, "आप लोग वापस न जाइये, न जाइये । कथा-वाचक महोदय आ रहे हैं ।"

अब यह वाक्य सुनकर चिदम्बर ने सोचा, "अच्छी बात है; मुझे जो तीन बातें सुनती थीं, मैं ने सुन ली हैं ।" और वह अपने घर लौटकर निश्चिन्त सो गया ।

पति के वहाँ जाने की बात पत्नी को मालूम ही नहीं थी । लाख समझाने पर भी पति सुनता नहीं–यह सोचकर, नाराज़ होकर अपने बच्चों को साथ लिये वह पुराण-पाठ सुनने घर से निकल पड़ी । इस जल्दबाजी में घर का दरवाज़ा बन्द करना भी वह भूल गयी ।

उस रात कुछ चोर पहले से ही वहाँ छिपकर हुए थे । चिदम्बर की पत्नी के बच्चों को लेकर निकलने के बाद वे घर में घुस गये । जब वे दबे पाँव कमरे में पहुँचे तब चिदम्बर नीन्द में बड़बड़ाने लगा–"क्या सभी प्रमुख आ गये हैं, कि और कोई आना बाकी है?"

ये बातें सुनकर चोर चौंक उठे । उन्होंने सोचा कि घर का मालिक जाग रहा है, इसलिये वे जहाँ के तहाँ दुबक गये ।

अब चिदम्बर मुखिये का दूसरा वाक्य दुहराने लगा–"बैठ जाइये, आप सब बैठ जाइये!" चोर भागते को हुए ।

इतने में गहरी नीन्द में ही चिदम्बर चिल्ला उठा, "आप लोग वापस न जाइये; कथा-वाचक महोदय आ ही रहे हैं ।"

चोरों ने सोचा-घर का मालिक किसी को साथ लेकर पीछा करने आ रहा है । बिना पीछे मुड़ कर देखे वे सब के सब भाग खड़े हुए ।

हिन्द महासागर तथा प्रशान्त महासागर में जल-तल में समुद्री-खरगोश नाम का जलचर निवास करता है। खरगोश के कान जैसी मूँछें होने के कारण इस का यह नाम पड़ा है। एक समुद्री-खरगोश ४७८,०००,००० अण्डे देता है।
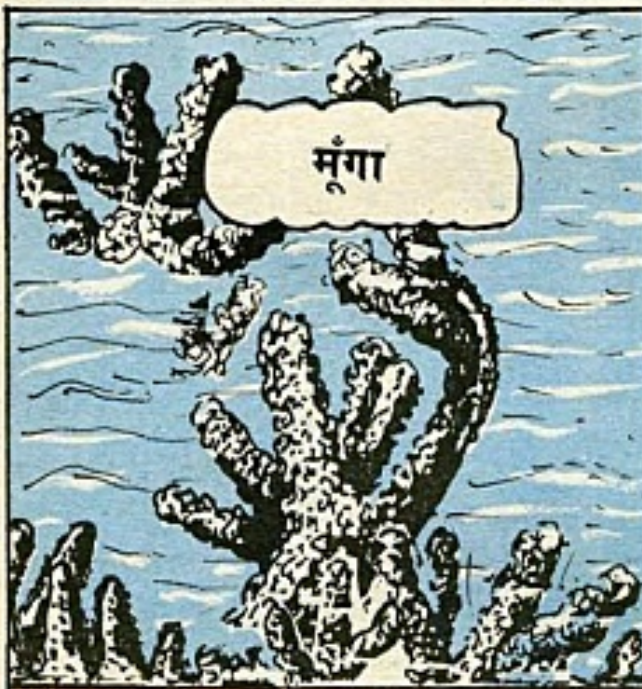
सूखकर कड़े बने अनिमोनी जैसे अत्यन्त सूक्ष्म जानवरों के कंकालों के समूह ही मूँगे होते हैं। इन में कैलशियम भरा रहता है।

विचित्र रेगिस्तानी चूहा

चूहे की जाति के जेर्बोवा नामक जानवर के पीछे के पैर आगे के पैरों से चार गुना लम्बे होते हैं। सिर व पूरा शरीर मिलकर जितना लम्बा होगा, उससे भी उस की पूंछ लम्बी होती है। यह चूहा एक छलांग में १० फुट का अन्तर लाँघ सकता है। इस प्रकार छलांग मारते समय संतुलन बनाये रखने में उसकी पूंछ काम देती है।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां नवम्बर १९८९ के अंक में प्रकाशित की जायगी।

M. C. Morabad

Devidas Kasbekar

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ सितम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

जुलाई के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : **श्रम के हाथ!**

द्वितीय फोटो : **निर्माण के साथ!!**

प्रेषिका : उमा शशी, २४-सी, जवाहर नगर, ग्वालियर-१. (म.प्र.)

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३६-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीज, चन्दामामा बिल्डिंग्ज, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये :

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्ज, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

CHANDAMAMA
(Hindi)

September 1989
Regd. No. M. 545